परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[चतुर्दश भाग]

●

प्रवक्ता :—

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

विशुद्ध ज्ञानोत्पत्तिरूप मोक्षका प्रसङ्ग—अब इस प्रसङ्गमें ज्ञानाद्वैतवादी जो क्षणिक सिद्धान्तको मानते हैं, बौद्धोंका एक भेद है ऐसे ज्ञानाद्वैतवादी यहां अपना मंतव्य रख रहे हैं कि मोक्ष नाम है विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका। देखिए ! सुनने में तो भला लग रहा है कि सही बात है। जहां विशुद्ध केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है उस का नाम मोक्ष है, लेकिन शङ्काकारके सिद्धान्तका विशुद्ध ज्ञान है कैसा ? विशुद्ध ज्ञान का यहां अर्थ है संततिका भ्रम छोड़ करके एक क्षणमें बर्तने वाला जो ज्ञान है और वही पूरा द्रव्य है ऐसे उस विशुद्ध ज्ञानस्वरूप पदार्थकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है इस विशुद्ध ज्ञानके जगनेपर संतानका भ्रम नही रहता है। इस सिद्धान्तके अनुसार ज्ञान-ज्ञान पदार्थ अनन्त उत्पन्न होते रहते हैं क्रमसे। अब उनमें जो भ्रम बन गया हो कि मैं वही हूं जो कल था व इसी भ्रमके कारण इस पूर्व ज्ञानमें ऐसा अतिशय हो गया है कि पूर्व ज्ञान उत्पन्न होते ही नष्ट हो होकर अपना सारा चार्ज अगले ज्ञानको दे देता है और इसी कारण अगला ज्ञान पूर्वकी घटनाओंका स्मरण कर लेता है और इसी रूप मानता है कि मैं ही तो हूं, वह जो कल था, लेकिन क्षणिकवादमें क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन पदार्थकी उत्पत्ति होती है। वहां पदार्थ स्थायी है ही नही। तो ऐसे अस्थायी विशुद्ध ज्ञान पदार्थमें संतानका भ्रम करनेका नाम संसार है। और, जब संततिका भ्रम न करे, एक विशुद्ध केवल क्षणमात्र होने वाले ज्ञानको उस ही रूप बस जान ले तो उस ज्ञानक्षणके बाद चूंकि आगे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता सो उस विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है।

रागादिमान विज्ञानसे रागादिरहित (विशुद्ध) ज्ञानकी उत्पत्तिकी अशक्यताका वैशेषिकों द्वारा कथन—उक्त प्रकारसे विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति मोक्ष

बताने वालेके प्रति वैशेषिक कह रहे हैं कि यह मोक्षका स्वरूप नही बन सकता। क्यों नही बन सकता ? रागादिकसहित ज्ञानसे रागादिकरहित ज्ञानकी उत्पत्ति संभव नही है। यहां संसार अवस्थामें ज्ञान रागादिसहित है ना, सब जीवोंका ज्ञान देख लो, सबके साथ राग जुड़ा हुआ है। तो रागसहित ज्ञानसे रागरहित ज्ञानकी उत्पत्ति नही हो सकती। एक दोष तो यह आता है। दूसरा दोष यह है कि जिस पूर्व बोधसे अगले ज्ञानमें जो बोधरूपता आई, ज्ञानपना आया तो जिस तरह एक बोधसे, एक ज्ञानसे अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपता आ जाती है उसी प्रकार पूर्वज्ञानके साथ रहे हुए रागकी रूपता आनेसे उत्तर ज्ञानमें रागादिकका भी तादात्म्य हो जायगा। जैसे अगले बोधमें अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपताका तादात्म्य हो गया क्योंकि उससे पहिले ज्ञानमें ज्ञानरूपता थी तो उससे पहिले ज्ञानमें सरागता भी थी तो ज्ञानमें रागका तादात्म्य हो जाना चाहिए। यदि रागादिक न हों तो फिर सरागताका भी अभाव मानना चाहिए।

बोधसे बोधरूपता होनेकी अशक्यताका वैशेषिकों द्वारा विवरण— विशुद्ध ज्ञानोत्पत्तिको मोक्ष माननेमें तीसरी आपत्ति यह है कि ज्ञानसे ही ज्ञानरूपता उत्पन्न होती है, इसमें कोई प्रमाण नही है, क्योंकि जो भी कार्य अब तक उत्पन्न हुए देखे गए हैं वे विलक्षण कारणसे उत्पन्न हुए देखे गए हैं। ज्ञानसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई इसमें तो कारण भी वही हुआ और कार्य भी वही हुआ, लेकिन लोकमें कार्य विलक्षण कारणसे उत्पन्न हुए देखे जाते हैं। देखो ना, धुवां अग्निसे उत्पन्न होता है तो धुवां, और अग्निमें कितना फर्क है ? धुवेंमें गर्मी नहीं, धुवेंमें कालापन है, पिण्डरूपता है, भापकी तरह उड़ता है और अग्निमें देखो धुवेंसे बिल्कुल विरुद्ध बातें पायी जाती हैं। धुवांमें गर्मी नही, अग्निमें गर्मी है, धुवां अन्धकाररूप है तो अग्नि प्रकाशरूप है। धुवां भाप जैसा है, अपिण्ड है तो अग्नि पिण्डरूप है। तो विलक्षण कारणसे ही तो कार्य देखा गया। और भी देख लो —बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है तो गेहूंका दाना, उसकी क्या शक्ल है और अंकुरकी क्या शक्ल है। विलक्षण हुए ना दोनों। तो कार्य विलक्षण कारणसे उत्पन्न होते हैं तो यह कहना कि बोधसे बोधरूपता होती है, ज्ञानसे ही ज्ञानरूपता होती है इसमें कोई प्रमाण नही रहा।

विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिमें स्याद्वादका अभिमत— उक्त प्रकार वैशेषिकोंने विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिरूप मोक्षके खण्डनमें जो उत्तर दिया है उसके बाद अब स्याद्वादसे उसका निर्णय सुनो। क्षणिकवादके माने गए विशुद्ध ज्ञानके स्वरूपसे तो स्याद्वाद सहमत नही है, वहां एक-एक समयका एक-एक ज्ञान चलता, पूरा पूरा पदार्थ है, और उसकी कोई संतति ही मानी जाती है, वास्तविक आधारभूत कोई पदार्थ नहीं माना जाता है। ऐसे विशुद्ध ज्ञानकी तो कोई सत्ता नही है, लेकिन विशुद्ध ज्ञानका यह अर्थ किया जाय कि जो ज्ञान विशुद्ध हुआ है, जिसमें रागादिक मलिनता नही है, ऐसे विशुद्ध ज्ञानके उत्पन्न होनेका नाम मोक्ष है, तो यह तो युक्त ही है, इसमें स्याद्वादको

विरोध नही है और तब यह प्रश्न उठाना कि रागादिमान ज्ञानसे रागादिरहित ज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है तो यह बात तो वैशेषिकोंके उत्तरसे ही विरुद्ध बैठती है। अभी अभी तो वैशेषिकोने यह कहा कि विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य होता है तो रागादि वाला विज्ञान विलक्षण रहा ना, रागादिरहित विज्ञानके मुकाबलेमें तो सराग ज्ञानसे विरागज्ञानकी उत्पत्तिमें क्या विरोध है और फिर अनुभव और युक्तियों से सोच लो, ज्ञानका स्वरूप राग तो नही है। रागमें जो बात दिखतो है वह ज्ञानमें नही है। रागमें जो बात दिखती है वह ज्ञानमें कहां है। ज्ञानमें मात्र जाननहारपना है। तो जो जिसका स्वरूप नहीं है वह कदाचित् साथ लगा हुआ हो तो उपायोंसे वह दूर किया जा सकता है। जिसका तादात्म्य हो वह तो दूर नही किया जा सकता। जैसे अग्गिमें उष्णता तादात्म्यरूपसे रहती है तो अग्निमेंसे उष्णताका विनाश नही किया जा स ता। उष्णतारहित अग्नि नही बन सकती, किंतु जलमें जो गर्मी है वह तो औपाधिक है, जलके स्वरूपवाली नही है। जलकी गर्मी उपायोंसे दूर की जा सकती है। तो जलकी गर्मीकी ही भाँति ज्ञानमें रागादिक सद्भाव है, वह औपाधिक है, स्वरूपसे निराला है इस कारण उपायसे ज्ञानके साथ रहने वाला राग दूर किया जा सकता है। रागादिमान विज्ञानसे रागरहित विज्ञान बन सकता है।

विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्यकी हठ करनेमें अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति होनेका प्रसङ्ग—अब देखिये जब अद्वैतवादियोंकी ओरसे कथन आया कि बोधसे बोधरूपता उत्पन्न होती है। और, उनकी यह गति यथार्थ भी है कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता उत्पन्न होती है। ज्ञानसे ज्ञान होगा कि अज्ञान होगा ? ज्ञानसे ज्ञानरूपता ही बनेगी। तो इस सम्बन्धमें फिर यह कहना पड़ा वैशेषिकोंको कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता नहीं हो सकती, क्योंकि विलक्षण कारणसे कार्य होता है। तो लो इस सम्बन्धमें सुनिए—यदि यह एकांत मान लोगे कि विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य होते हैं, तो अचेतन शरीरसे चेतनकी उत्पत्ति भी माननी पड़ेगी। तब आत्माका उच्छेद हो जाएगा चारुवाकमतका प्रसङ्ग आ जायगा। बात तो यह कि कार्योत्पादके सम्बन्धमें सही दोनों ही बातें हैं। विलक्षण कारणसे भी विलक्षण कार्य होते हैं और समान कारणसे भी समान कार्य होते हैं। मिट्टीसे घड़ा बना तो लो, समान कारणसे समान कार्य बना ना। अग्निसे धुवाँ हो चला यह विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य हो गया, पर एकांत तो कुछ नहीं रहा। जहाँ जो बात संगत हो वहाँ वह बात लगानी चाहिए। तो विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्यकी उत्पत्तिका हठ करनेपर यह दोष आया कि फिर अचेतन शरीरसे चेतन भी उत्पन्न होने लगें।

अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति माननेमें विडम्बना—अब यहां चारुवाक खुश होकर कहता है कि वाह-वाह अच्छी बात कही। बात तो यही है कि अचेतन शरीरसे चेतनकी उत्पत्ति होती है। चेतन कोई शाश्वत वस्तुभूत पदार्थ नही है।

जहाँ, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतोंका संयोग हो वहाँ चैतन्यकी उत्पत्ति होती है। तो इस प्रसंगमें अधिक न कहकर केवल उन चारुवाकोंसे इतना ही कहना है कि यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके सम्बन्धसे जीव उत्पन्न होने लगें तो रसोईघरमें प्राय: रोज भोजन बनता है। किसीने मिट्टीकी हांडीमें कढ़ी पकाई हो तो वहाँसे पशु-पक्षी मनुष्यादिक खूब निकल बैठें क्योंकि वहां पृथ्वी तो है ही, मिट्टीकी हांडी है ना, और पानी उसके भीतर है ही, तेज अग्नि भी मिल रही है और हवा भी उसके अंदर भरी है। हंडीपर कोई ढक्कन रख दिया जाय तो हवाके ही कारण वह ढक्कन अलग फिंक जाता है। जब ये चारों चीजें वहां मिल गई तब तो हाथी, शेर चीता, आदिक जानवर धड़ाधड़ निकल पड़ना चाहिए, क्योंकि तुमने चारभूतोंसे चेतनकी उत्पत्ति मानी है। तो तुम्हारा यह मानना योग्य नहीं है। और, फिर जब परलोक है, परलोकमें जाने वाला कोई है, उसकी सिद्धि होती है तो परलोकी तो स्वतन्त्र रहा। परलोक है यह भली प्रकार सिद्ध है। परलोक न होता तो बच्चा उत्पन्न होनेके बाद एकदम माँका दूध कैसे पीने लगता। उसे खूब समझाया जाता, बड़ा अभ्यास कराया जाता तब वह बड़ी मुश्किलसे दूध पीनेकी बात जान पाता लेकिन पूर्व लोकमें उसके आहारसंज्ञाका संस्कार था, तो यहाँ झट प्रवृत्ति हुई। अनेक पुरुषोंको बचपनमें पूर्व-भवके स्मरण और स्मरण जैसे कार्य भी उनके देखनेमें आये हैं। परलोक है, परलोकमें रहने वाला चेतन है तो अचेतन शरीरसे चेतनकी उत्पत्ति नहीं है। विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य भी हो सकता है और समान कारणसे समान कार्य भी हो सकता है। जहाँ जैसा उचित है, युक्तिसंगत है वहाँ वैसा मानना चाहिये।

बोधसे ज्ञानान्तरमें बोधरूपता होनेके हेतुके विकल्प—अब वैशेषिक विज्ञानवादीसे पूछ रहे हैं कि ज्ञान अन्य ज्ञानका कारण बनता है ऐसा जो इनका कथन है तो पूर्वज्ञानको ज्ञानांतरका कारण बननेमें हेतु क्या है? किस कारणसे एक ज्ञान अगले नवीन ज्ञानमें ज्ञानरूपताका कारण बन जाता है? क्या इस कारणसे कि वह पूर्वकाल भावी ज्ञान है? पहिले समयमें होने वाला जो ज्ञान है वह ज्ञान उत्तर समयके होने वाले ज्ञान पदार्थमें ज्ञानरूपता करदे याने अगले ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण बने इसका कारण क्या यह है कि चूँकि वह पूर्व समयमें है, अथवा यह कारण है कि समान जातीय है, अगला ज्ञान भी ज्ञान है, पहिला ज्ञान भी ज्ञान है। तो जाति समान होनेके कारण एक ज्ञानने अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपता उत्पन्न कर दी। या एक संतानपना हेतु है अर्थात् ज्ञान ज्ञान लगातार बारम्बार प्रतिसमय नये-नये ज्ञान पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं तो उनमें एक संतान बनी हुई है। जैसे हारमें एक-एक दाने कर के १०० दाने हैं, पर हारके १०० दाने इस तरह एकके ऊपर एक अवस्थित हैं और शोभा दे रहे हैं। वे सब एक सूतमें फंसे हुए हैं। इसी तरह एक ज्ञान अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपता उत्पन्न कर दे, इसका कारण क्या है? एक ज्ञानसे दूसरे ज्ञानमें बोधरूपता कैसे आई ये तीन विकल्प किए गए।

बोधसे ज्ञानांतरमें बोधरूपता होनेकी सिद्धिमें पूर्वकालभावित्व और समानजातीयत्व हेतुकी अनैकान्तिकता—उक्त विकल्पोंमें यदि पहिला विकल्प कहोगे कि भाई अगले ज्ञानसे पूर्वमें वह ज्ञान है ना तो पूर्वकाल में होनेके कारण अगले ज्ञानमें वह ज्ञानरूपता उत्पन्न कर देता है तो भाई इसमें तो समान क्षणोंके साथ व्यभिचार आ गया। जैसे मान लीजिए—देवदत्त व यज्ञदत्त ये दो आदमी बैठे हैं और उन दोनों पुरुषोंके शरीरमें अलग-अलग ज्ञानोंकी परम्परा चल रही है। अब ८ बज कर १ मिनटपर देवदत्त नामक पुरुषमें जो ज्ञान हो रहा है वह ज्ञान ८ बजकर २ मिनटमें यज्ञदत्तके ज्ञानमें ज्ञानरूपता क्यों नहीं पैदा करता, क्योंकि पूर्वकालमें तो हो गया। देवदत्तके ज्ञानोंमें तो वहां ८ बजकर पहिले मिनटमें उत्पन्न हुए ज्ञानने उसी देवदत्तके ८ बजकर दो मिनटमें होने वाले ज्ञानमें ज्ञानरूपता तो लादी और वह यज्ञदत्तमें ८ बजकर दो मिनटपर जो ज्ञान हुआ उसमें ज्ञानरूपता न डाले, इसका क्या कारण है ? बोधरूपता न डाल देगा तो पूर्वकालभावित्वका व्यभिचार हो जायगा, अर्थात् पूर्वकाल भावी होनेसे पूर्व ज्ञान उत्तर ज्ञानमें ज्ञानरूपता पैदा कर देता यहां हेतु सदोष हो गया। और, यदि दूसरा विकल्प कहोगे कि समान जातीयपना है अर्थात् यह भी ज्ञान है वह भी ज्ञान है इसलिए ज्ञान अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपताको डाल देता है तो भी दूसरे पुरुषमें उत्पन्न होने वाले ज्ञानसे फिर भी व्यभिचार आ गया। अर्थात् समान जातीय ही ज्ञान तो देवदत्तका है और समान जातीय ही ज्ञान यज्ञदत्तका है। तो देवदत्तका ज्ञान यज्ञदत्तके ज्ञानमें ज्ञानरूपता क्यों नही पैदा कर देता है ? और, साथ ही पूर्वकाल भावीका भी अब विकल्प न रहा। तुमने केवल समान जातीयताके नातेस एक ज्ञान दूसरे ज्ञानमें ज्ञानरूपता उत्पन्न कर देता यह मान लिया तो दूसरेको संतानमें होने वाल सारे ज्ञानोंमें ज्ञानरूपता बना दे देवदत्तका नाम। तो अन्य संतान में होने वाले ज्ञानके साथ यह समान जातीयत्व हेतु अनेकांतिक होता है।

बोधसे बोधरूपताके सम्बन्धमें विचार—स्याद्वाद सिद्धान्तसे इस समस्या पर कुछ दृष्टि डालें तो पहिले नित्यानित्यात्मक एक आधार मानना पड़ेगा। ज्ञान तो उत्पन्न होते रहते हैं। वे प्रतिसमयके एक-एक ज्ञान परिपूर्ण पदार्थ नहीं हैं, किंतु एक जीवके प्रतिसमयमें जो ज्ञानस्वरूपका परिणमन चलता है वह परिणमन है प्रत्येक समयके ज्ञान ज्ञान, तो ऐसा माना जानेपर पहिला ग्यान ग्यानरूप ही तो है ना सो अगला ग्यान ग्यानरूप ही बने इसमें कोई आपत्ति नहीं आती। न यह दोष आता है कि देवदत्तका ग्यान यग्यदत्तके ग्यानमें ग्यानरूपता क्यों नही पैदा करता ? नही करता, क्योंकि उपादान भिन्न है। कोई एक ग्यान अगले सारे ग्यानोंमें ग्यानरूपता क्यों नहीं पैदा करता ? यों नहीं पैदा करता कि कार्य उपादानसे होता है और उपादान माना गया है पूर्व पर्याय संयुक्त द्रव्य। तो कोई किसी भी पर्यायमें रहने वाला द्रव्य अगली पर्यायकी पर्यायकी उत्पत्तिका कारण बनेगा, न कि अगले समयकी पर्यायों का उल्लंघन न करके भविष्यकी सारी पर्यायोंका कारण बनेगा। तो स्याद्वाद दृष्टिसे

तो ग्यानमें ग्यानरूपता भी बनती है और रागादिमान विग्यानसे रागादिरहित ग्यान की उत्पत्ति भी बनती है।

बोधसे बोधरूपताकी सिद्धिमें एकसन्तानत्व हेतुकी अन्त्य ज्ञानसे व्यभिचारिताका प्रदर्शन—उक्त दो विकल्पोंकी चर्चाके बाद वैशेषिक तीसरे विकल्पके सम्बन्धमें कह रहे हैं कि ग्यानसे ग्यानरूपता बनती है अन्य ग्यानमें, ऐसा सिद्ध करनेमें यदि एक संतानत्व हेतु दोगे, जैसे कि चूंकि वे ग्यान, ग्यान, ग्यान सारे एक संतानमें उघड़ रहे हैं इस कारणसे ग्यान अन्य ग्यानमें ग्यानरूपता पैदा कर देता है। जैसे कि बड़े चमकदार दानोंका हार हो तो पहिला दाना अपनी चमक अपने अगले दानेको सौंप देती है। एक संतानमें हैं ना वे, इसी प्रकार एक सतानमें रहनेके कारण एक ग्यान दूसरे ग्यानको ग्यानरूप बना देता है, ऐसा यदि मानोगे तो उसका अन्तिम ग्यानसे व्यभिचार आएगा, अर्थात् जो योगियोंका अन्तिम ग्यान है वह अन्तिम ग्यान तो अन्य ग्यानको पैदा नहीं कर पाता क्योंकि योगियोंके मरणमें जो अन्तिम ग्यानक्षण है वह उत्तर ग्यानक्षणको नही उत्पन्न करता। विग्यानवादके मतमें मोक्ष इसीको कहा गया है कि यह भ्रम मिटा देवे कि मैं सदाकाल रहता हूँ। मैं शाश्वत कोई आत्मा हूँ यह जब तक भ्रम लगा है तब तक जीवका संसार है। विग्यानवादके सिद्धान्तमें जब यह भ्रम दूर हो जाय और यह मान लें कि मैं तो कुछ हूं ही नहीं, है यह ग्यानक्षण, सो यह स्वतन्त्र पदार्थ है। इसकी सत्ता दो समय तक भी नहीं है, यह एक समयमें होता है और उसी समयमें विलीन हो जाता है। ऐसा माननेपर होता क्या है कि एक आखिरी ऐसा ग्यान होता है कि जो मिट गया तो फिर उसके बाद नया ग्यान नहीं होता। इसीका नाम निर्वाण माना है। जैसे दीपकका निर्वाण क्या? दीपकमें जो लौ चल रही है उस लौके बाद लौ, यों चलता रहता है। घंटे भर जला दीपक घंटे भरमें जितने असंख्यात समय हैं प्रत्येक समयमें उस लौके बाद लौका स्वरूप बना, दूसरा, तीसरा चौथा लौ, यों असंख्याते लौ इसमें बने। कदाचित किसी प्रकारसे किसी एक लौके बाद दूसरा लौ न आए तो इसके मायने है कि सारी लौ अब न आयेंगी, अब दीपक खतम हो गया। तो इसी प्रकार जिस ग्यानके बाद दूसरा ग्यान न आयगा उस अन्तिम ग्यानमें देखिये सतान तो एक थी मगर बोधरूपता उत्पन्न न हो सकी तो उस अन्तिम ग्यानसे अनैकांतिक दोष होता है। अतः यह विकल्प भी ठीक नहीं कि एक संतान होनेके कारण ग्यानसे ग्यानरूपता बनती है।

क्षणिकवादियोंका ज्ञानसे ज्ञान होते रहनेका वक्तव्य विज्ञानवादी कह रहे हैं कि हम अन्तिम ज्ञान कोई मानते ही नहीं हैं अर्थात् प्रत्येक ज्ञान नये ज्ञानोंको उत्पन्न करता ही रहता है। अन्तिम ज्ञान तो वह कहलाये कि जिसके बाद फिर ज्ञान उत्पन्न न हो। जब जीव मरण करता है तो मरण शरीरमें रहने वाला ज्ञान अन्य ज्ञानको उत्पन्न कर देनेका कारण होता है। मरण शरीरमें रहने वाला ज्ञान गर्भ

अवस्थामें होने वाले ज्ञानका कारण है और जगती हुई अवस्थाका ज्ञान सोई हुई अवस्थाके ज्ञानका कारण है। अन्तिम ज्ञान कुछ नहीं हुआ करता। इसका भाव यह है कि सोई हुई अवस्थामें लोगोंको यह मालूम सा होता है कि इसके कुछ ज्ञान नहीं है। ग्यान बिना यह देखो मुर्दा सा बेहोश पड़ा है और लगता भी बेहोश सा है पर सोई हुई अवस्थामें भी ग्यान बराबार चल रहा है। किन्तु, वैशेषिक सुपुप्तावस्थामें ग्यान नहीं मानते सो जो विग्यानवादी हैं ग्यानसे ग्यानकी उत्पत्ति मानते हैं उनसे पूछा जा रहा है कि सोई हुई अवस्थामें ग्यान कहांसे आ गया? इस ग्यानको किसने पैदा किया? तो उनका उत्तर है कि पहिले जाग रहे थे तब तो ग्यान था, तो जागृत अवस्थामें होने वाला ग्यान सोई हुई अवस्थाके ग्यानका कारण होता है। इसी प्रकार मरण शरीरमें रहने वाला ग्यान नये शरीरके गर्भमें होनेवाले ग्यानका कारण बना है।

ज्ञानमें ज्ञानान्तरकी उत्पत्ति माननेपर भी सन्तानान्तरके ज्ञानसे व्यभिचारित्वके अनिवारणका वैशेषिकों द्वारा कथन—मरणग्यानसे व जाग्रत गयानसे गर्भग्यान व सुषुप्तग्यानकी उत्पत्ति माननेपर वैशेषिक कहते हैं कि ऐसा कहने पर भी तो एक संतानत्व हेतु निर्दोष नहीं रह सकता क्योंकि मरण शरीरमें जो ग्यान होता है उसे मान लिया तुमने कि बीचमें होनेवाले शरीरके ग्यानका कारण अथवा गर्भ वाले शरीरके ग्यानका कारण तो इससे यह व्यभिचार दोष दूर नहीं हो सकता कि वह अन्य संतानमें भी ग्यानका जनक क्यों नहीं हो जाता? यह माना जानेपर भी मरण समयमें जो शरीरमें ग्यान था वह रास्तेमें विग्रह गतिमें जो कार्माण शरीर चलता है उस शरीरमें गयानका कारण है अथवा यह मरण समयका शरीरग्यान गर्भ शरीरमें ग्यानका कारण बन जायगा। इतना कहनेपर भी यह नियम तो न बना कि वह इस ही शरीरके ग्यानका कारण बने! उस समय अनेक जीव पैदा हो रहे हैं तो किसी भी शरीरका ग्यान किसी भी पैदा होने वाले जीव शरीरके ग्यानमें कारण क्यों नहीं हो बैठता? क्योंकि अब निश्चित् हेतु तो कुछ नहीं रहा।

सान्वयज्ञानसे उत्तरज्ञानके होनेका प्रतिपादन—इसका स्पष्टीकरण स्याद्वादविधिसे इस प्रकार है कि मरणसमयका ज्ञान अगले जन्मके समयके ज्ञानका कारण होता है लेकिन वह ज्ञान परिणमन है। उन ज्ञानोंका आधारभूत आत्मा है। कोई एक आत्मा मान लिया जाय और फिर उस आत्माका एक क्षणका ज्ञान उत्तर क्षणके ज्ञानका कारण माना जाय तो तो सही बैठता है, पर जहां आत्मा नामक कोई पदार्थ ही नहीं है, एक एक समयके होने वाले ज्ञानका ही नाम आत्मा है अर्थात् जैसे एक मिनटमें हजार समय हैं तो वहां हजारों ज्ञान हुए और एक एक ज्ञानका ही नाम एक एक पूरा आत्मा है अर्थात् हजारों आत्मा हुए। तो जब वह ज्ञान पदार्थ स्वतन्त्र पूरा सत्तावान है तो एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ कार्य कारण क्या? नियम क्या? तो पदार्थ न्यारे-न्यारे सत् हैं उन पदार्थोंका कारणपना क्या? जैसे एक

शरीरमें रहने वाला ज्ञान दूसरे शरीरमें रहनेवाले ज्ञानका अनुभव तो नहीं कर सकता क्योंकि वे जुदा हैं दोनों। तो इसी तरह एक ही शरीरमें उत्पन्न होते रहने वाले ज्ञान चूंकि परिपूर्ण पदार्थ हैं, स्वतन्त्र सत्तावान हैं तो इनका एक दूसरेसे क्या सम्बन्ध ? और फिर एक ज्ञानसे दूसरे ज्ञानमें बोधरूपता कैसे आ सकती है ? तो एक संतानमें वे ज्ञान चल रहे हैं इस कारण पूर्वज्ञान अर्थात् ज्ञानमें बोधरूपता ला देवे यह माना जाय तो यह माननेपर इस अन्तिम ज्ञानसे व्यभिचार आया और यदि माना जाय कि अन्तिम ज्ञान कोई है ही नही प्रत्येक ज्ञान नये ज्ञानमें बोधरूपता उत्पन्न करता है। तो एक शरीरका ग्यान दूसरे शरीरके ग्यानका कारण क्यों नहीं बन जाता ?

अन्यके ज्ञानसे अन्यके ज्ञानके होनेके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर—अब विज्ञानवादी कहते हैं कि हम एक शरीरके ज्ञानको दूसरे शरीरके ज्ञानका कारण मानते हैं। जैसे पढ़ाने वाले अध्यापकका ज्ञान शिष्यके ज्ञानका कारण है। कौन कहता है कि एक शरीरका ज्ञान दूसरे शरीरके ज्ञानका कारण नहीं बनता। शिक्षक पढ़ाता है, शिष्य ज्ञान हासिल करता है तो इस प्रकार शिक्षकका ज्ञान उस शिष्यके ज्ञानका कारण बना कि नही ? तो एक शरीरका ज्ञान भी दूसरे शरीरके ज्ञानका कारण बनता है, ऐसा क्षणिकवादियोंके कहनेपर वैशेषिक पूछते हैं कि उपाध्यायका ज्ञान शिष्यके ज्ञानका कारण बन गया, पर दुनियांमें जो इतने आदमी भरे हुए हैं उनके ज्ञानका कारण क्यों नही बनता ? यदि कहो कि कर्मवासना इसकी नियामक है, जैसी जिसके साथ वासना लगी है, जो वासना भी ज्ञानरूप ही है, अथवा कहो कि अदृष्ट लगा है, क्रिया लगी है, वह नियंत्रण करती है कि उपाध्यायका ज्ञान शिष्यके ज्ञानका कारण बनेगा, ढोर चराने वालेके ज्ञानका कारण न बनेगा, तो वैशेषिक उत्तर देते हैं कि वासना भी तो ज्ञानको छोड़कर अन्य कुछ नहीं क्योंकि विज्ञानवादमें सर्व कुछ तत्त्व ज्ञान ही माना गया है तो वासना भी ज्ञान है और वासनाका है ज्ञानसे तादात्म्य सम्बन्ध फिर वह ज्ञान सामान्य रह गया। तब फिर ज्ञानसे ज्ञानरूपता बनती है यह बात सर्वसाधारण बन चुकी, फिर किसीका ज्ञान किसी दूसरेके ज्ञानका कारण क्यों नही बन जाता ?

क्षणिकवादीका और विशेषवादीका ज्ञानके सम्बन्धमें मन्तव्य—दोनों दार्शनिकोंके प्रश्नोत्तरका भाव यह है कि विज्ञानवादी तो यह मानते हैं कि एक ज्ञान अगले ज्ञानका कारण बनता है और विशेषवादी मानते हैं यह कि ज्ञानगुण है, आत्मा से जुदी चीज है, उसका आत्मामें सम्बन्ध होता है। और ज्ञान निकल गया आत्मासे उसका नाम है मोक्ष। ज्ञानकी शुद्धि करनेकी कोई आवश्यकता नही है। ज्ञान क्या शुद्ध होगा ? ज्ञानसे ही तो सारे झगड़े लग गए। इन खम्भा, ईंट, पत्थर आदिकमें ज्ञान नही है तो देखिये, ये कैसे आरामसे पड़े हैं, इन्हें कोई विकल्प ही नही है। इस ज्ञानसे ही तो सारा कष्ट हो बैठा। उसकी क्या शुद्धि करना ? यह ज्ञान दूर हो जाय

आत्मासे और इन जड़ पदार्थोंकी भाँति केवल रह जाय आत्मा, बस शान्ति तो उसमें है, निर्वाण उसमें है. ऐसे ये दो सिद्धान्त सामने चल रहे हैं जो परस्पर एक दूसरेको अपने मन्तव्य रख रहे हैं। इस प्रसङ्गमें विज्ञानवादियोंका यह कथन चल रहा है कि सोई हुई अवस्थाका जो ज्ञान है। जगते समयका ज्ञान सोते समयके ज्ञानका कारण है। उस ज्ञानके कारण सोई हुई अवस्थामें भी ज्ञान बना रहता है वैशेषिक कहते हैं कि यह बात तो असम्भव है, ठीक नहीं है क्योंकि सोई हुई अवस्थामें अगर ज्ञान मान लो तो जगे और सोयेमें कुछ फर्क ही न रहा। जगेमें भी ज्ञान था और सोये हुएमें भी ज्ञान मान रहे हो, तब तो जगे और सोयेमें फर्क न होना चाहिये। लोग फिर क्यों पहिचान जाते हैं कि यह सोया है यह जग रहा है ? इसी कारण तो पहिचानते हैं कि उस सोये हुएमें ज्ञान नहीं है और उस जगे हुएमें ज्ञान है । तभी तो झट बता देते हैं कि यह आदमी सोया हुआ है और यह आदमी जग रहा है। अब तुम ज्ञान मान रहेहो दोनों में। जगे हुएमें भी ज्ञान है और सोये हुए में भी ज्ञान है। तब फिर उसका कोई फर्क न रहना चाहिये। क्योंकि जागने वाला पुरुष जिस तरह स्वसंवेदित ज्ञानका उपयोग कर रहा है उसी प्रकार सोया हुआ मनुष्य भी स्वसंवेदित ज्ञानका उपयोग कर रहा है, फिर उनमें फर्क क्या रह जायगा ?

जागृवदस्थाके ज्ञान और सुषुप्तावस्थाके ज्ञानके सम्बन्धमें संक्षिप्त विवरण—इस प्रसंगपर स्याद्वादी थोड़ा सा स्पष्टीकरण कर रहे हैं कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञान नही है यह तो कहा ही नहीं जा सकता। क्या उस समय जीव ज्ञानरहित होगया? सोई हुई अवस्थामें ज्ञान अवश्य है, तब यह भी नही कह सकते कि जागी हुई अवस्थासे सोई हुई अवस्थामें कुछ भेद न रहना चाहिए, कोई विशेषता न रहना चाहिए, क्योंकि सोई और जागी हुई अवस्थामें कुछ भेद न रहा क्योंकि सोई हुई अवस्थामें विज्ञानका सद्भाव होनेपर भी जो अति तेज निद्रा आ रही है उसके कारण वह ज्ञान तिरोभूत हो गया है, ज्ञान दब गया है, ढक गया है। उस ज्ञानका अभिभव हो गया इससे प्रकट विशेषता जाहिर होती है जागी हुई अवस्थासे सुषुप्तावस्थामें। सोई हुई अवस्थामें तो ज्ञानका तिरोभाव है और जागी हुई अवस्थामें ज्ञानका आविर्भाव है। जैसे कोई पुरुष पागल हो गया तो पागल और गैरपागलमें लोग अन्तर जानते कि नहीं ? नही तो, गैरपागलको ही पागल कह दें और पागलसे भी अपना सम्बन्ध बना लें। लोगोंकी समझमें है ना यह कि यह पागल है, और यह पागल नही है यह समझ कैसे बनी ? यों ही तो बनी कि पागलके ज्ञानमें कुछ अभिभव है, तिरोभाव है, कुछ बिगाड़ है, विशुद्धि प्रकट नही है। और जो पागल नही हैं उनका ज्ञान शुद्ध प्रकट है। तो अन्तर जैसे यहां समझा गया है ऐसे ही अन्तर जागे हुए और सोये हुए पुरुषमें भी समझना चाहिए। जागे हुए और पुरुषका ज्ञान आविर्भूत है और सोये हुए पुरुषका ज्ञान तिरोभूत है। अथवा जैसे कोई दवा सुंघानेसे मूर्छित हो गया तो ऐसे मूर्छित पुरुषमें और गैर मूर्छित पुरुषमें लोगोंको फर्क मालूम होता है कि नही। फर्क मालूम होता है

वह क्या फर्क दिखाई देता है कि यह मूर्छित पुरुषका तो मदिरादि पीनेसे जो इसमें मद वेदना उत्पन्न हुई है उससे इसका ज्ञान अभिभूत हो गया है और जो मूर्छित नही है उसका ज्ञान मद वेदनासे अभिभूत नही है।

सुषुप्तावस्थामें ज्ञानका अतीनिद्रासे अभिभव - देखिए मूर्छित होनेका अर्थ क्या है ? मदकी वेदनासे पीड़ित होनेका नाम मूर्छित होना है। तो क्या मूर्छित हुआ पुरुष मजेमें है ? लोगोंको ऐसा दिखता है कि यह बहुत आनन्दमें है। यह पहिले बहुत विह्वल था, इष्ट वियोगमें रोता था, इसको तेज मदिरा पिला दिया तो यह मूर्छित पड़ गया, अब इसको कोई वेदना नहीं। अरे इष्ट वियोगमें जो उससे वेदना हुई थी उससे भी तीव्र वेदना है इस मूर्छितको जो कि मद वेदनासे पीड़ित हो रहा है। अन्यथा फिर यह कह लो कि पुरुषसे तो अच्छे निगोदिया जीव हैं। इन जानवरोंसे अच्छे तो ये पेड़ वनस्पति हैं, क्योंकि ये खड़े हैं, ये न रोते हैं न हिलते डुलते हैं, न चिल्लाते हैं। अरे इनको तो जानवरोंसे भी अधिक वेदना है। जैसे मद अवस्थामें मद वेदनासे पीड़ित होता है और उसका ज्ञान तिरोभूत हो गया है और जो मूर्छित नही है उसका ज्ञान सावधान है, स्पष्ट है, तब तो इनमें अन्तर नजर आ रहा है ना। तो इस प्रकार जागृत अवस्थामें और सोई हुई अवस्थामें भी अन्तर है। वह अन्तर यह है कि अतिनिद्रासे अभिभूत ज्ञान है, सोये हुएका और अतिनिद्राके अभावसे जगने वाले का ज्ञान अभिभूत हुआ नही है। देखिये—यहाँ अतीनिद्रासे तिरोभाव बताया गया है, क्योंकि नींद तो इस समय हम आप भी ले रहे हैं। ले रहे हैं ऐसी कि हम चाहे जग रहे हैं हम बात सुन रहे हैं, पर बहुत हलकी नींद इस समय भी आ रही है जिससे कि कोई ज्ञानका तिरोभाव नही हो पा रहा है। तो छोटी नींदका काम तिरोभाव नही है जहाँ अतिनिद्रा आ रही है वहां ज्ञानका तिरोभाव है और जरा और भी नींद आ जाय तो भी श्रोता महोदयका ज्ञान फिर भी पूरा दबा नही है, उनसे अगर सोये हुएमें वक्ता पूछ बैठे कि कहो लालाजी सो रहे हो क्या ? तो कहेंगे नही साब, सुन रहा हूं। तो छोटी-मोटी निद्रासे ज्ञान अभिभूत नहीं होता। निद्रा तो प्रायः हर समय आ रही। खाने वाले बच्चोंमें किसीमें तो यह बात स्पष्ट देखनेको मिल जाती है, कहो कौर भी नीचे गिर जाय। तो यहां अतीनिद्राकी बात कह रहे हैं।

विज्ञानवादियों द्वारा मिद्धत्वसे सुषुप्तज्ञानका अभिभव कहे जाने पर मिद्धत्वके स्वरूपका विशेषवादियों द्वारा प्रश्न वैशेषिकोंने यहां यही तो उपालम्भ दिया ना, कि ज्ञान यदि ज्ञानकी धारा बनाये रहता है तो सोये हुएमें और जगे हुए पुरुषमें कोई विशेषता न होना चाहिए। तो इसी बातपर विज्ञानवादी अब पुनः कह रहे हैं क्योंकि उन्हें थोड़ा इस समयमें स्याद्वादके कथनसे बल मिला, तो पुनः कहते हैं कि हाँ यही बात है। सोई हुई अवस्थामें अतिनिद्राके कारण ज्ञान अभिभूत

हो गया है। अथवा अब अति जड़ताके कारण सोई हुई अवस्थामें ज्ञानका तिरोभाव हो गया है इसलिए जगे पुरुषमें सोये पुरुषमे विशेषता नजर आती है। वैशेषिक कहते हैं कि वह अति जड़ता अथवा अतिनिद्रा भी तो ज्ञानका धर्म माना हुआ, तुम्हारे यहां तो ज्ञानके सिवाय और कुछ तत्त्व माना ही नही गया। एक विज्ञानाद्वैत है, तो निद्रा भी ग्यानस्वरूप है, वह बेहोशी भी ग्यानस्वरूप है वह जड़ता भी ग्यानस्वरूप है। तो उसका तो ग्यानसे तादात्म्य हो गया और जिसका ग्यानसे तादात्म्य है वह ग्यान का तिरोभाव कर सके यह बात नहीं बन सकती। यदि कहो कि वह अतिनिद्रा अथवा अतिजड़ता ज्ञानसे भिन्न चीज है तब फिर यह बतलावो कि वह मिद्धता, मिद्धता नाम है इन दोनों अवस्थाओंका चाहे अति जड़ता आ जाय और चाहे अतिनिद्रा आ जाय, दोनों पुरुषोंको मिद्ध कहा करते हैं। तो भी मिद्धपना यदि विज्ञानसे निराला है तो उसका स्वरूप बतलावो। पदार्थ तो ५ प्रकारके माने गए हैं—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार। क्षणिकवादियोंने पदार्थ इस तरहके ५ माने हैं। अब देखिए! जिनको जो स्पष्ट समझमें आया उसने उस ही प्रकार पदार्थोंकी संख्याका निर्माण किया। वैशेषिकोंकी दृष्टि, उनका मूड कुछ इस तरहका एक हीं पदार्थमें भेद कर करके बोध करनेका था। तो उन्होंने इस तरह पदार्थ ७ माने हैं—द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। यहाँ माने गए हैं—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार। तो तुम्हारे इन ५ पदार्थोंके स्वरूपमेंसे उस मिद्धपनेका स्वरूप क्या है सो तो बताओ?

मिद्धत्वका स्वरूप—इस प्रश्नको सुनकर यद्यपि स्याद्वादी लोग ज्ञानको स्वतन्त्र सत् पदार्थ नही मानते और उनके प्रति यह प्रश्न भी नही हो सकता, लेकिन थोड़ीसी स्पष्टता कर रहे हैं उस वैशेषिकके प्रश्नके विरोधमें कि हाँ उस मिद्धताका स्वरूप है। मिद्धादि सामग्रीके कारण निद्रा होनेके कारण मदिरापान होनेके कारण जो एक ज्ञान अनध्यवसाय हो गया है और आध्यात्मिक अर्थके विचारमें अब नही लग रहा है। चलते हुए पुरुषके पैरमें जैसे तृण छू जाय तो तृणस्पर्शसे ज्ञान जैसे एक अनध्यवसायरूप रहता है, उसके समान सोई हुई अवस्थामें ज्ञान रहता है. यह है मिद्धत्व का स्वरूप। देखिये! यहां उत्तर तो देना चाहिए था बौद्धोंको, पर गुणोच्छेदका नाम मोक्ष है, यह बात विशेषवादकी नही समझमें आई, इस कारण हां जिन जिनसे विशेषवादियोंको विवाद है उन उनके पक्षको थोड़ा स्याद्वाद भी स्पष्ट कर रहा है और देखिये कितना अच्छा स्पष्टीकरण है, इससे अच्छा स्पष्टीकरण और क्या हो सकता है मिद्धत्वके बारेमें? सोई हुई अवस्थामें कुछ अभिभूत विकृत ज्ञान है तो उस ज्ञानका स्वरूप क्या है? सो बतलावो! अब जरा कुछ युक्तियोंको खोजें तो यह प्रश्न उठ सकता है कि बतलाओ सोई हुई अवस्था वाले पुरुषका ज्ञान कौनसा ज्ञान है? सम्यग ज्ञान है कि संशयज्ञान है या विपर्ययज्ञान है कि अनध्यवसाय ज्ञान है? तो यहां स्पष्ट किया गया कि अनध्यवसाय ज्ञान है। इतना साफ बताया कि सोए हुए पुरुषका जो

ज्ञान है वह अनध्यवसायका भेद है. चलती हुई, जगती हुई हालतमें जो तृणस्पर्श आदिकका सामान्य ज्ञान होता है वह अनध्यवसाय जरा कुछ अच्छा था हो गया और सोई हुई अवस्थामें वह भीतरी ज्ञान चल रहा है जिसको उस कालमें वह अनुभव नहीं करता, पर जागनेपर अनुभव करता है कि हां कुछ था। तो वह अनध्यवसायका एक प्रकार है। कैसे नहीं है उस मिद्धतासे अविभूत ज्ञानका स्वरूप ?

विशेषवादियों द्वारा अभिभवके स्वरूपपर दो विकल्प और प्रथम विकल्पका निराकरण अब वैशेषिक उस अभिभवके स्वरूपपर प्रश्न कर रहे हैं कि सोई अवस्थामें ज्ञानका तिरोभाव हो गया, ढक गया, तो इस अभिभवका अर्थ क्या है ? क्या इस अभिभवका अर्थ विनाश है कि ज्ञानका विनाश हो गया ? यदि ज्ञनका विनाश हो गया अभिभवका यह अर्थ माना जायगा तो ज्ञानकी सत्ता ही न रही, फिर झगड़ा ही किस बातका रहा कि पूर्वज्ञान उत्तर ज्ञानका कारण है ऐसा सिद्ध करनेमें मेहनत ही क्यों की जा रही है ? वहाँ उत्तर ज्ञान रहा ही नहीं अभिभव हो गया, अर्थात् विनाश हो गया। अथवा मानलो थोड़ी देरको विनाश हो गया तो विनाश किसी कारणसे ही तो हुआ। अभिभवके कारण विनाश हो गया तो फिर विनाश निर्हेतुक न रहा, सकारण हो गया। विज्ञानवादमें पदार्थकी उत्पत्ति भी किसी कारण से नहीं होती है और पदार्थका विनाश भी किसी कारणसे नहीं होता। क्षणिकवादमें पदार्थ स्वयं ही अपने स्वरूपका लाभ लेता है और स्वरूप लाभके समय ही वे पदार्थ उसी पदार्थके कारण नष्ट हो जाते हैं। एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कारण बने यह बात क्षणिक सिद्धान्तमें सम्भव नहीं है। यह तो पदार्थका स्वरूप बताया है कि पदार्थ हुआ, उसी समय आया, उसी समय गया दूसरे समय भी तो नहीं ठहरता, कोई पदार्थ ऐसा क्षणिक है। तो ऐसे सिद्धान्तमें न तो सोई हुई अवस्थाके ज्ञानकी सत्ता बताई जा सकती है और न सोई हुई अवस्था वाले पुरुषके ज्ञानका विनाश भी बताया जा सकता है इसलिए अभिभवका अर्थ विनाश तो कह नहीं सकते।

विशेषवादियों द्वारा अभिभवस्वरूपके द्वितीय विकल्पका निराकरण— यदि कहो कि अभिभवका अर्थ है तिरोभाव, तो कहते हैं कि यह बात भी युक्त नहीं, क्योंकि विज्ञानकी सत्ताका ही नाम सम्वेदन है ऐसा जब माना गया है तो विज्ञानका तिरोभाव नहीं हो सकता है। ज्ञान है और दवा है, यह कहना युक्त नहीं है, क्योंकि ज्ञान तो सम्वेदनात्मक हुआ करता है। उसके दबनेका क्या अर्थ है ? कोई पत्थर लकड़ी जैसी चीज नहीं है ज्ञान, जैसे कि कहीं कोई वस्तु रख दिया लो दब गया। अरे ज्ञानका नाम ही सम्वेदन है। सम्वेदन क्या किसीसे दबाया जा सकता है ? किसी भी प्रकार सोई हुई अवस्थामें तुम ज्ञानका सद्भाव सिद्ध नहीं कर सकते। तब फिर अन्तिम ज्ञान बन गया ना कुछ ? तो एक संतानपना होनेसे यदि बोधसे बोधरूपता मानोगे तो अन्तिम ज्ञानसे यों व्यभिचार दोष होता है इस कारण यह कहना युक्त

नहीं है कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता उत्पन्न होती चली जाती है।

संसार और मोक्षका वस्तुगत स्वरूप—इस प्रकरणमें मोक्षका स्वरूप बताया जा रहा है। मोक्षका स्वरूप जानना कल्याण चाहने वाले भाईयोंका मुख्य कर्तव्य है। सुख है मोक्षमें और दुःख है संसारमें। संसार नाम है अशुद्ध प्रकारके आत्माके भावोंका। और मोक्ष नाम है आत्माके ही शुद्ध भावोंका। यह जो दुनिया है यह जो स्थान दिख रहा है यह जो कुछ नजर आ रहा है इसका नाम संसार नहीं है। संसार नाम है आत्माके रागद्वेष मोह भावोंका। इसी जगह अरहंत भगवान भी रहते हैं, उनके तो अब संसार नहीं रहा है। यद्यपि संसारकी शेष अवस्था है, शरीरसहित हैं मगर उनको जीवन्मुक्त कहा गया है। तो इस जगह रहनेसे जीवको दुःख नहीं है। जगह बनी रहे, किन्तु जीवोंमें जो रागद्वेषमोहका परिणाम चलता है, अज्ञानभाव बर्तता है उससे क्लेश है और उस ही भावका नाम संसार है। इसी प्रकार मुक्त हो जाते हैं तो वहां होता क्या है कि इस तरहके विभाव नही रहते। ज्ञानकी परिपूर्णता रहती है। आत्मामें जो स्वभाव है स्वरूप है उसका शुद्ध विकास हो जाय, अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द प्रकट हो इसका नाम मोक्ष है।

मोक्षके स्वरूपमें विशेषवाद और क्षणिकवादका मन्तव्य - मोक्षका स्वरूप तो यह है कि जहां ज्ञान और आनन्द गुणका परम विकास हो गया है, किन्तु इस प्रसङ्गमें दो दार्शनिक अपनी बात रख रहे हैं। वैशेषिकने तो यह अपना प्रस्ताव रखा कि आत्मामें जो ज्ञान गुण आदिक गुण हैं, इच्छा द्वेष आदिक अवगुण हैं उन समस्त गुणोंका वियोग हो जाना, विनाश हो जाना इसका नाम मोक्ष है और क्षणिकवादियों ने अपना यह प्रस्ताव रखा कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होना अर्थात् ऐसा ज्ञान होना कि जिस ज्ञान पदार्थके बाद फिर सिलसिला न रहे, जन्म मरण न रहे, एक ऐसा ज्ञान पदार्थ प्रकट होना इसका नाम मोक्ष है। इन दो पक्षोंमेंसे आपको कौनसा पक्ष अच्छा लग रहा है? क्या आत्मामेंसे ज्ञानानन्द आदिक गुण खतम हो जायें इसका नाम मोक्ष है यह भला लग रहा है अथवा विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होना इसका नाम मोक्ष है, यह भला लग रहा है? विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है, यह भला लग रहा होगा। देखिये! विशुद्ध ज्ञानको उत्पत्तिका नाम मोक्ष है, यह कुछ अच्छा जच रहा होगा, लेकिन क्षणिकवादमें विशुद्ध ज्ञानको आत्माका गुण नही माना है क्षणिकवादियोंने ज्ञानको एक अलग पदार्थ माना है और ज्ञान ही ज्ञान है दुनियामें। पदार्थ ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ नहीं है। यह ज्ञानाद्वैतवादी क्षणिक सिद्धान्तका पक्ष है। आत्मा नही माना गया इस सिद्धान्तमें किन्तु हर समय जो ज्ञान उत्पन्न होते हैं वे एक एक समयके ज्ञान ही पूरे-पूरे पदार्थ हैं इस तरहसे उस ज्ञान पदार्थको मानते हैं और उन ज्ञान पदार्थोंमें एक संतान मानता है। जैसे कि एक तेलका दीपक जल रहा है तो जितनी जितनी तेलकी बूंदें एक एक पहुँच पाती हैं, उतने ही दीपक हैं अर्थात् एक

दीपकके बाद दूसरा दीपक जला, उसके बाद फिर और दीपक जला तो जैसे ३० मि० तक तेलका दीपक जला तो उसमें कितने दीपक जुड़ गये ? हजार दीपक जुड़ गये होगे । मान लो छोटी–छोटी हजार बूंदें जल गयी तो उन हजारों दीपकोंके जलते बीच हम आप लोगोंको यह पता तो नहीं पड़ता कि यह दीपक जल चुका, अब यह दूसरा दीपक जल रहा, अब यह तीसरा दीपक जल रहा, अब यह चौथा दीपक जल रहा । यह मालूम होता है कि आधा घण्टे लगातार कहीं दीपक जल रहा हैं । इसी तरह वे क्षणिकविस्तारवादी मानते हैं कि आत्मा कहो अथवा ज्ञान कहो एक ही बात है । समयमें नये–नये ज्ञान पैदा होते हैं –नये–नये आत्मा उत्पन्न होते हैं । एक समय में नये–नये ज्ञान पैदा होते हैं, नये नये आत्मा उत्पन्न होते हैं । एक समय रहता है, अगले समय नही रहता है, लेकिन वे आत्मा एक संतानमें हो रहे हैं इससे ऐसा लग रहा है इस जीवको कि मैं वही आत्मा हूँ जो १० वर्ष पहिले था, कल था, अमुक काम किया था, सारे स्मरण इसको रहते हैं, हैं वहाँ जुदे–जुदे आत्मा । उन आत्माओंमेंसे, उन ज्ञानक्षणोंमेंसे एक ज्ञानक्षण शुद्ध हो गया अर्थात् उसकी संतान अब आगे न चले इसका नाम मोक्ष है ।

प्रसङ्गप्राप्त अभिभव शब्दके अर्थविकल्पोंका वैशेषिक द्वारा निरसन की चर्चा—उक्त दोनों मन्तव्योंके परस्पर वाद-विवादके बीच एक छोटासा प्रसङ्ग यह आया था कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता बनती है । पहिले समयका जो ज्ञान हुआ उसमें जो बोध पड़ा है, बुद्धि पड़ी है, जो भाव पड़ा है, जो अनुभव पड़े हैं, वह ज्ञान अपने सारे अनुभव दूसरे ज्ञानको सौंप देता है । इस बोधरूपताके प्रदानकी इन क्षणिकवादियोंको यों जरूरत पडी कि निरंश ज्ञानवादके प्रति यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि यदि वे ज्ञान ज्ञान सारे अलग–अलग पदार्थ हैं तो क्या वजह है कि यह ज्ञान पहिले जाने हुए पदार्थको भी जान जाता, जिसके बादका ज्ञान अलग पदार्थ है तो हम आपकी जानी हुई बातको तो नहीं जान सकते, क्योंकि जुदे–जुदे हैं । हमारा आत्मा निराला है, आपका आत्मा निराला है तो आपकी जानी हुई बातको यह मेरा ज्ञान नही जान सकता है । तो इसी प्रकार एक ही शरीरमें जब न्यारे–न्यारे आत्मा पैदा हो रहे हैं तो एक आत्मा बहुतोंकी बात कैसे जान जाता है कि उसने अमुक काम किया था । जब न्यारे–न्यारे आत्मा हैं तो वहां यह मानना पड़ता है कि जो ज्ञान मिटता है वह मिटते समय अपना सारा अनुभव, सारा चार्ज एक नये ज्ञानके द्वारा जानी हुई सभी बातोंका स्मरण रहता है । तो यह सिद्धान्त जब रखा कि ज्ञानसे अगले ज्ञानमें अनुभव पहुंचा करता है तो वैशेषिकोंने यह पूछा कि जब कोई मनुष्य सो जाता है तो सोई हुई हालतमें तो ज्ञान नही रहता है तो यह कहना तो युक्त नही रहा कि कोई ज्ञान अगले ज्ञानमें बोधरूपता उत्पन्न करता है, उसे तो बोध नही रहता सोई हुई अवस्थामें, तो यह कैसे ठीक बैठेगा कि बोधसे बोधरूपता चल रही है । इस के उत्तरमें ज्ञानवादियोंने यह कहा कि सोई हुई हालतमें अतिनिद्रासे उस ज्ञानका अवि-

भव हो गया है, तिरोभाव हो गया है, दब गया है, तेज नींद हो जानेके कारण या अतिजड़ता आ जानेके कारण सोई हुई अवस्थामें ज्ञान तो है पर वह ज्ञान दब गया है इसलिए वहां अनुभव नहीं चलता, पता नहीं रहता है, ऐसा उत्तर देनेपर विशेषवादियोंने प्रश्न किया था कि इस अविभवका अर्थ क्या है ? अतिनिद्रासे या अतिजड़ता से जो ज्ञानका अविभव हो गया है, सोई हुई अवस्थामें जो ज्ञानका अन्तरोध हो गया है, जो ज्ञान दब गया है उस दबनेका अर्थ क्या है ? क्या ज्ञानका नाश होगया अथवा ज्ञानका तिरोभाव हो गया ? दोनों ही विकल्पोंमें कुछ आपत्ति बताई गई थी ।

अविभवका अर्थप्रतिबन्ध - अब इस सम्बन्धमें स्याद्वादी लोग कहते हैं कि सुषुप्तावस्थाके समय निद्राके कारण ज्ञानका अविभव हो गया है यह बात स्पष्ट है। यहां अविभवका अर्थ समझिये ! जैसे अग्निका काम क्या है ? जलाना ! पर अग्नि के पास यदि कोई प्रतिबन्धक मणि रख दी जाय या कोई मंत्रवादी लोग मत्र पढ़ें तो उस समय अग्नि जलानेका काम नहीं कर सकती। खेल दिखाने वाले लोगोंको आपने देखा होगा, खास करके दशहरेके दिनोंमें ऐसा खेल दिखाने वाले लोग यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। तो वे करते हैं कि अपने हाथमें कोई विशिष्ट पत्रोंका रस लगा लेते हैं जिससे वे खूब अग्निमें तपाई गई लोहेकी जंजीर अथवा लोहेकी सांकलोंको पकड़कर हाथसे खींचते हैं। उस अग्निसे वह सांकल इतनी जल जाती है कि बिल्कुल लाल रङ्गकी हो जाती है और उसे हाथसे पकड़कर वे खेल दिखाने वाले खींचते हैं तो लोग उसे देख कर बड़ा आश्चर्य करते हैं देखो इतनी तेज जलती हुई लोहेकी सांकल ये पकड़े हुए हैं पर जलते नहीं है। तो उस खेल दिखाने वालेने किया क्या कि उस आगका प्रतिबन्ध करने वाले कुछ पत्तोंका रस हाथमें लगा लिया, इसमें अग्निका अब प्रतिबन्ध हो गया। कुछ बातें तो यहां भी आप देख सकते – दो एक औषधियाँ होती हैं एक तो नौसादर और दूसरा चूना, या कोई और ऐसी ही चीज इनको मिलाकर अगर किसी दोनाके नीचे चिपका दिया जाय और दोनामें दाल पकनेके लिए जलती हुई आगपर रख दिया जाय तो दोना नहीं जलेगा पर दाल पकने लगेगी। तो वह दोना क्यों नहीं जलता ? क्योंकि उसमें औषधिके द्वारा आगका प्रतिबन्ध कर दिया गया है । जैसे अग्निके पास कोई मणि रख दी जाय या कोई मंत्रवादी मत्र पढ़ता रहे तो फिर अग्निमें जला देनेकी सामर्थ्य वहां नहीं रहती है। तो हम तुमसे पूछ सकते हैं कि बतलावो वहाँ उस मणिमंत्र आदिक के द्वारा जो अग्निका प्रतिबन्ध हुआ है उसका अर्थ क्या है ? क्या अग्निका नाश हो गया है यह अर्थ है ? तो अग्नि तो प्रत्यक्ष दिख रही है, अग्निका नाश तो नहीं हुआ है। यदि कहो कि अग्निका तिरोभाव हो गया है तो भाई जो स्व और परका प्रकाश करनेका स्वभाव रखती है, जो जला देनेका काम रखती है ऐसी अग्निका तिरोभाव तो असम्भव है और फिर देख लीजिये एक दोनाके नीचे जो दबाईयां लगा दी गयी हैं तो उन दवाइयोंके कारण आगमें तो वह दोना नहीं जलता, पर उस दोनामें रखी हुई दाल पकने लगती है। तो वहां हुआ

क्या कि दोनाके प्रति आगका प्रतिबन्ध हो गया है न कि अग्नि दालको पका दे इसका प्रतिबन्ध हुआ ! तब न तो उस समय अग्निका नाश कह सकते और न अग्निका तिरोभाव कह सकते। यही बात उस सोई हुई अवस्थाके ज्ञानकी भी है। उस समय अतिनिद्राके द्वारा जो सोए हुए ज्ञानका अभिभव हो गया है जिससे वहां अनुभव नहीं चलता, तो वहां न तो ज्ञानका नाश हुआ है, न ज्ञानका तिरोभाव हुआ है किन्तु ज्ञान का अविभव ही हुआ है। प्रतिबन्ध जरूर हो गया है। दूसरा भी दृष्टान्त देखो ! एक दीपक जल रहा है, उस दीपकके ऊपर यदि कोई खुला कनस्तर औंधा रख दिया है या कोई मटका वगैरह औंधाकर रख दिया है तो बतलावो उस जलते हुए दीपकका प्रविभव हो गया कि नहीं ? अब उस प्रतिबन्धका क्या यह अर्थ है कि दीपकका नाश हुआ ? नाश तो नही हुआ। क्या यह अर्थ है कि दीपकका तिरोभाव हो गया। तिरोभाव स्व-पर प्रकाश वाले दीपकका क्या सम्भव है ? तो यदि यह कहोगे कि समझानेमें, बो ने में तो नही आ रहा कि मणिमंत्रके समय उस अग्निका प्रतिबन्ध किस प्रकार होता है, मगर विश्वासमें है स्वरूप सामर्थ्यका प्रतिबन्ध है जैसे कि स्वपरप्रकाशक स्वरूप प्रतिरोहित हो जाता है तो चैतन्यता अद्विरोहित रहता है। बस, यही बात तो उस सोये हुएके ज्ञानमें है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जगती हुई हालतमें भी ज्ञान था और सोई हुई हालतमें भी ज्ञान है। जगते हुएकी हालतमें अतिनिद्रा न होनेके कारण बोधरूपता है, वहां अनुभव है। समझ चल रही है और सोये हुए पुरुषके ज्ञानमें अतिनिद्रा से अभिभव होनेके कारण वहाँ समझ नही चल रही है।

उपाय
भावना

रागादि विनाशके कारणके सम्बन्धमें क्षणिकवादीका मन्तव्य— इस प्रकरणमें मुख्य बात तो यह चल रही है ना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है विशुद्ध ज्ञानके मायने क्या है। रागादिमान ज्ञान न रहकर रागादिरहित के ज्ञान होना। अथवा रागादिरहित ज्ञान क्या ? रागादि न रहना। यहाँ यह पूछा जाने पर कि ऐसा कौनसा उपाय है जिस उपायसे राग नहीं रहता ? तो क्षणिकवादीने कहा कि विशिष्ट भावनाका अभ्यास करनेसे रागादिका विनाश होता है। कोई एक विशिष्ट उत्कृष्ट भावना है ऐसी जिसके बार बार करनेसे रागादिकका विनाश होता है। इसके अनेक अर्थ हैं बारह भावनायें भी ऐसी हैं अनित्य, अशरण, संसार आदिक समस्त बारह भावनायें ऐसी ही हैं कि जिनका बार बार अभ्यास करते रहनेसे रागादिक कम हो जाते हैं अथवा रागादिकका कुछ नाश भी हो जाता है। इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि ऐसी भावना बनाये कोई कि मैं तो केवल ज्ञानरूप हूँ। ज्ञानके अतिरिक्त मेरे आत्माका और कुछ स्वरूप ही नहीं है, ऐसा अपने आपके बारेमें ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञानमात्र हूँ। ऐसी निरन्तर भावना लगाये कोई तो उस अभ्याससे भी रागका विनाश होता है। लेकिन ये क्षणिकवादी लोग क्या मानते हैं ? इन भावनाओंकी बात वे नही कहते हैं। किन्तु यह भावना बताते हैं कि मैं कुछ नही हूँ। यह तो केवल एक ज्ञानक्षण है। जिस कालमें जो ज्ञान होता है वही पूरा पदार्थ है, लगातार मैं नही रहता

मैं कल था। आज हूँ। कल रहूँगा। ऐसा में हूँ ही नहीं मैं तो क्षणवर्ती हूँ। एक समय को उत्पन्न हो जाता हूँ फिर नष्ट हो जाता हू। मैं नित्य नही हूँ। इस प्रकारकी भावना कोई बनाये तो राग नष्ट होता है ऐसा ये लोग कहते हैं। और ऐसा माननेमें उन्होंने हित क्या समझा? हितकी बात क्या ढूँढ़ी ? यह हित ढूँढ़ा कि जब हम यह समझते हैं अपने बारेमें कि में पहिले भी था अब भी हूँ, आगे भी रहूँगा तो अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं और अनेक उलझने आ जाती है। मैंने किया यह काम' में करूँगा यह काम आदिक। इससे यह मानना श्रेयस्कर है कि मैं तो क्षणिक हूँ। सदा नहीं रहता हूँ मेरा पहिलेसे कोई लगाव नही है, आगे भी कुछ लगाव न रहेगा इस प्रकार क्षणमात्र अपने को माननेमें हित समझा है, यदि ऐसा क्षणिक आनेको मानें, आत्मा न समझें। सदा रहने वाला न समझें, ऐसी भावना बने तो उससे रागादिकका विनाश होता है।

क्षणिकवादमें, विशिष्टभावनाभ्यासकी रागादिविनाशमें कारणरूपता की असिद्धि—रागादिविनाशके उक्त उपायपर विशेषवादी कह रहे हैं कि विशिष्ट भावनाके अभ्याससे रागादिका विनाश कहना अयुक्त है। क्योंकि विनाश तो आपने निर्हेतुक माना है तब अभ्यास कारण बन ही नही सकता। विनाश निर्हेतुक है, बिना कारणके होता है, ऐसा क्षणिक वादियोंने कहा है। पदार्थ जब एक ही समय रहता है, अगले दूसरे समयमें रहता ही नही है, तो पदार्थ इस ही स्वभावके कारण हुआ और आगे उसका विनाश कोई कर ही नही सकता। तो दूसरा कौन विनाश करे। जिस समय कोई आत्मा उत्पन्न हुआ है उस समय पहला आत्मा तो रहा नही। उसका तो अभाव हो गया तो जिसका अभाव हो गया, जो है नहीं वह तो इसका नाश क्या करे-गा ? इससे आत्मा उत्पन्न होता है और अपने आप उसी समय नष्ट होनेमें हेतु कुछ नही रहा। कारण कुछ नही रहा। यह माना है क्षणिक वादियोंने, लेकिन यहाँ तो कारण आ गया रागका विनाश विशिष्ट भावनाके अभ्याससे हुआ। तो इसका सिद्धान्त से विरोध है। दूसरी बात यह है कि क्षणिकवादमें अभ्यास बन ही नही सकता, क्योंकि अभ्यास वहाँ होता है जहाँ ध्याता (ध्यान करने वाला) प्रवस्थित है। पर जहाँ ध्यान करने वाला कुछ है ही नही, तो क्षणिक होनेपर अभ्यास क्या बनायें ? क्योंकि कि आत्मा क्षण-क्षणमें नया-नया बनता है ? जब नया-नया आत्मा बने तो अभ्यास फिर किसका किया जाय ? एक आदमी हो, जिसपर बहुत सी बातें गुजरती हैं, बहुतसे धक्के लगते हैं, धोखे आते हैं, ज्ञान जगता है, समझ बनती है, ऐसा ही पुरुष तो अन्तः प्रकाश पानेपर ध्यान कर सकेगा। जो क्षण-क्षणमें उत्पन्न हुआ और नाश हुआ वह अभ्यास किसका करेगा। यह भी कहना युक्त नहीं है कि संतानकी अपेक्षासे उसमें एक अतिशय ऐसा बन गया कि अभ्यास कर रहे हैं वे सब क्षण-क्षणमें उत्पन्न होने वाले आत्मा। अतिशय न बननेका कारण यह अन्वयके अभावमें संतान भी कोई चीज नहीं बनती। अतः रागादिक सहित ज्ञानसे साधारण ज्ञानसे रागादिरहित ज्ञानकी याने असाधारण ज्ञानकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि अविशिष्ट (साधारण) ज्ञानसे उत्तरोत्तर

सातिशय ज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकते ? इस कारण भोगियोका ऐसा ज्ञान बनना कि जिसमें समस्त कल्पनायें दूर हो जायें ऐसे विज्ञानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है, यह क्षणिक वादमें नहीं बनता।

मोक्षोपायकी जिज्ञासा और गवेषण देखिये जितने भी दार्शनिक हुए हैं सबने मार्ग निकाला है कि संसारके दु:खोंसे हटनेका उपाय क्या है। सबने अपनेको दु:खी अनुभव किया। जो क्षणिकवादी लोग हैं वे भी अपनेको दु:खी अनुभव कर रहे हैं तब तो यह उन्होंने विचार ढूँढ़ा कि आत्मा क्षण क्षणमें नया-नया होता है। पहिलेसे किसी आत्माका सम्बन्ध ही नही है। तो ऐसा ही मानलो तो विकल्प दूर हो जायेंगे। जब सारी कल्पनायें समाप्त हो जायेंगी और एक क्षणमात्रका जिसे ज्ञान है, उस रूप ही अनुभव बनेगा तो राग नष्ट होगा, कल्पनायें दूर होंगी मोह मिटेगा। तब शान्ति मिलेगी तो लो इन विशेषवादियोंने वह उपाय ढूँढा है कि आत्मामें जो ज्ञान लगा हुआ है इससे ही तो दु:ख है। जब खबर आती है कि अमुक मिलमें इतने लाख रूपयोंका टोटा पड़ गया है, यह बात ज्ञानमें आयी तभी तो दु:ख हुआ। तो सारे दु:खोंकी जड़ यह ज्ञान है। इससे ज्ञान ही न रहे आत्मामें उसका नाम मोक्ष है। यह उन्होंने उपाय ढूँढ़ा। कोई दार्शनिक पूछता है कि आत्माका स्वरूप तो एक सहज ज्ञान है, केवल ज्ञान स्वभाव, प्रतिभासमात्र, ज्ञाननमात्र, लेकिन अनादि कालसे उपाधिका सम्बन्ध है, शरीर का बन्धन है कर्मोंका सम्बन्ध है। जिस कारणसे यह ज्ञान अपनी विशुद्ध हालतमें प्रकट नही होता और इसकी कल्पनाका रूप बन गया है ज्ञान तो करते हैं वे संसारी जीव मगर विकल्परूपसे ज्ञान करते हैं, कल्पनायें उठाकर ज्ञान करते हैं, यह अमुक है, यह मेरा अमुक है, ये मेरे घरके लोग हैं, ये दूसरे लोग हैं। यह अमुक इष्ट चीज है, ऐसा विकल्प कर करके यह ज्ञान बना करता है। जब आत्माके सहज ज्ञानस्वरूपका परिचय हो जायगा यह मैं आत्मा एक विशुद्ध जाननमात्र हूं, इसमें जो कल्पनायें उठा करती हैं यह मेरे स्वरूपका काम नही है। यहां राग भावका ससर्ग हो गया है जिससे ज्ञानका कल्पनारूप बन गया है। यदि राग स्नेहभाव इनका सम्पर्क न रहे तो इस तरहकी कल्पनायें नही बन सकतीं। इस रागको दूर किया जाय तो यह कल्पनाओंका विकृत रूप भी मिटे। और फिर ज्ञानका वह विशुद्ध स्वच्छ जाननमात्र स्वरूप प्रकट हो तब शान्ति मिलेगी। यह उपाय बहुत कम दार्शनिकोंने जान पाया है।

सान्वय विशुद्धज्ञानोत्पत्तिकी मोक्षस्वरूपताका प्रतिपादन - यहां कुछ समय तक विशेषवादी और क्षणिकवादीका परस्पर विरोध था, अब उस सम्बन्धमें स्याद्वादी लोग कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे और उस बीचमें कुछ शङ्कायें आयेंगी, उन्हें चाहे विशेषवादीकी तरफसे समझो, चाहे क्षणिकवादीकी तरफसे समझो। स्याद्वादी कहता है कि जो विशुद्ध ज्ञानके उत्पन्न होनेका नाम मोक्ष कहा है उसमें इतना सशोधन और कर दो कि विशुद्ध ज्ञानके संतानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष

है तो यह सही बैठ जाता है। विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिमें आगे न रहा ज्ञान और विशुद्धज्ञानकी संतानकी उत्पत्ति कहनेपर यह सिद्ध होता है कि यह ज्ञान आगे भी अतिविशुद्ध रहेगा। जैसे मुक्ति अवस्थामें केवल ज्ञान हुआ तो अब केवल ज्ञान, केवल ज्ञान, इसकी ही संतान चलती रहेगी। अभाव न होगा, पर क्षणिकवादमें ज्ञानके संतानका अभाव हो जाता है ऐसा विशुद्ध ज्ञानको माना है। संतान होना, ज्ञानकी संतति होना यह मानना पड़ेगा। और, मानते भी हो कुछ सीमा तक। किन्तु वह चित्तकी संतति अन्वयसहित है अर्थात् उसके आधारभूत आत्मा है। ज्ञान स्वतन्त्र एक एक पदार्थ नहीं है, एक पदार्थ तो आत्मा है और उस आत्मामें उत्तरोत्तर ज्ञान चलता रहता है। जब वह ज्ञान रागादिरहित विशुद्ध होता है तब उसका नाम मोक्ष है। जब यह ज्ञान विकृत चलता है, कल्पनाओं सहित चलता है तब इन ज्ञानोंका नाम है संसार। तो एक आत्मा मानना पड़ेगा, क्योंकि जो बँधा है वही तो छूटेगा। जब बन्धन मानोगे तो मोक्ष मानना पड़ेगा। अब एक समयमें ज्ञानपदार्थ उत्पन्न हुआ तो उसका बन्धन क्या रहा? और भी क्या रहा? एक आत्मा है, वह आत्मा अपने विभावोंसे बंधा है, और वही आत्मा अपने आत्माके सहजस्वरूपके ज्ञानसे छूट जाता है. तो जो बँधा हुआ होता है वही तो छूटा करता है पर निरन्वय चित्त संतान माननेपर बन्धन भी सिद्ध नहीं होता है और जब बन्धन सिद्ध नहीं होता तो मोक्ष भी सिद्ध नहीं होता। क्या यह युक्त है कि दूसरा तो बँधे और तीसरा मुक्तिका उपाय करे तथा कोई चौथा छूटे। जब आत्मा नये-नये पैदा होने वाले कहते हैं तो बँधा तो कोई आत्मा था और मोक्षका उपाय किसी दूसरे आत्माने किया और मोक्ष हुआ किसी अन्य आत्माका तो यह तो विडम्बनाकी बात है। एक सदा रहने वाला आत्मा पहिले मानो तब बन्धन और मोक्षकी बात सिद्ध हो सकती है।

क्षणिकवादमें बन्ध और मोक्षका अनियम - क्षणिकवाद बौद्धोंका सिद्धान्त है अर्थात् बौद्धबन्धु क्षण-क्षणमें नया-नया पदार्थ उत्पन्न होता है, कोई पदार्थ सदाकाल नहीं रहता, ऐसा मानते हैं। जैसे एक शरीरमें दिन भरमें अनेकों लाखों करोड़ों आत्मा उत्पन्न होते हैं। एक आत्मा नहीं है और स्याद्वाद है जैनोंका सिद्धान्त। जैन लोग ऐसा मानते हैं कि आत्मा एक है, सदा रहता है, अजर अमर है, लेकिन वह आत्मा प्रतिसमय परिरमणशील है सो यह आत्मा उपाधिके सम्बन्धसे, कर्मोंके सम्बन्धसे नाना गतियोंमें भ्रमण करता है और क्रोध, मान, माया, लोभादिक अनेक परिणाम किया करता है तथा निरुपाधि अवस्थामें विशुद्ध ज्ञातृत्व परिणमन करता है। ऐसे यहां दो सिद्धान्त हैं ना, क्षणिकवाद और स्याद्वाद। तो क्षणिकवादियोंके प्रति कह रहे हैं स्याद्वादी कि एक आत्मा यदि नहीं मानते और मानते हो कि जुदे-जुदे समयोंमें जुदे-जुदे ज्ञानपदार्थ पैदा होते रहते हैं तो फिर मोक्षका उपाय क्यों करते? क्योंकि एक आत्मा एक समय रहा, दूसरे समय दूसरा रहा। जब अलग-अलग समयोंमें पृथक पृथक आत्मा रहता है तब मोक्ष किसको कराते हो? बँधा भी

कोई नहीं, मुक्त भी कोई नही, एक समयमें पैदा हुआ उसी समयमें नष्ट हुआ, अब किसको मोक्षकी जरूरत है ? कोई बँधा हो तब तो उसे मोक्षका उपाय करना चाहिए और करता है मोक्षका उपाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि दूसरा तो कोई बँधा था और दूसरा ही कोई मुक्त हुआ है।

ज्ञानक्षणोंमें संतानकी एकताका सुझाव — इस प्रसङ्गमें क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि यद्यपि वे ज्ञान क्षण-क्षणमें नये-नये बनते हैं लेकिन उनमें संतानकी तो एकता है। जैसे एक लालटेनके दीपककी लौ नई नई निरन्तर बन रही है। जहां एक बूंद जली वह पहिला दीपक है वहाँ तेलका दूसरा बूंद पहुंचा तो दूसरा दिया जल रहा है, फिर तीसरा बूंद पहुंचा तो तीसरा दिया जल रहा है, तो जितने बूंद पहुँचते हैं उतने दिया जल रहे हैं लेकिन एक मालूम पड़ता है। संतान बराबर चल रही है। कुछ बीचमें अन्तर नही आया, इसी तरह ये आत्मा नये नये एकदम लगातार उत्पन्न होते रहते हैं। एक दिनमें अरबों खरबों आत्मा उत्पन्न हो गए। तो उन सब आत्माओंकी संतान एक है। संतानके मायने बाल-बच्चे नही, संतानके मायने सिलसिला। एक शरीरमें वे नये-नये आत्मा उत्पन्न हो रहे हैं। इस कारण ही बद्धकी मुक्ति सम्भव हो गई। अर्थात् संतान एक हैं ना, तो अब बँधा आत्मा लगने लगा, और जब बँधा लगने लगा तो उसका मोक्ष मान लिया जायगा। यहाँ क्षणिकवादीका अभिप्राय यह है कि आत्मा तो नये-नये उत्पन्न होते रहते हैं पर उनमें संतान एक रहती है। जैसे एक हारमें दाने तो न्यारे-न्यारे रहते हैं पर उन सब दानोंमें एक सूतकी संतान रहती है। उस एक सूतमें पिरोये हुए होनेसे हारके उन दानोंमें प्रभाव बन जाता है। इसी तरहसे उन दानोंकी भांति आत्मा तो न्यारे-न्यारे हैं एक ही शरीरमें पर उनमें संतान एक लग रही है।

संतानकी एकताके कथनमें आत्मद्रव्यका आयातत्व — संतानकी मान्यतापर क्षणिकवादियोंसे पूछा जा रहा है कि उस संतान शब्दका अर्थ क्या है ? अथवा संतान शब्दसे जो तुमने समझा, दूसरेको समझाते हो वह बात वास्तविक सत् है या नहीं ? यदि वास्तविक सत् कहने लगोगे कि हाँ संतान वास्तवमें है, कोई पदार्थ है संतान, तो उसीका नाम हम आत्मा कहते हैं। कहते हो कि संतानमें अनेक ज्ञान उत्पन्न हो रहे हैं और स्याद्वाद कहता है कि एक आत्मामें क्रमसे नये-नये अनेक ज्ञान उत्पन्न होते हैं, तो संतान कहो या आत्मा कहो, जो उन सब पर्यायोंमें रहता है ऐसे एक पदार्थके माने पदार्थकी सत्ता नहीं रह सकती। यदि कहो कि संतान तो कल्पनामात्रसे सत् है वास्तवमें संतान कोई वस्तु नहीं, तो एक तो कोई रहा ही नहीं। संतान वास्तविक रहा नहीं। जिस किसी भी शरीरमें जितने ज्ञानक्षण आत्मा उत्पन्न हो रहे हैं अरबों खरबों उन सब आत्माओंमें, उन ज्ञानोंमें जब कोई एक वस्तु न रही तो यही तो अर्थ

हुआ कि कोई तो बंधा है और कोई छूटता है। फिर मुक्तिके लिए प्रवृत्ति नहीं हो सकती है।

उदाहरणपूर्वक ज्ञानक्षणोंमें उपादान भूतसत्की सिद्धि - जैसे एक नाटक में दिखाते कि एक क्षणिकवादी सेठ था, था वह कंजूस। उसकी गाय एक ग्वाला चराने ले जाता था। एक माह तक चरानेके बाद ग्वालाने जब चराईके दाम माँगे तो वह सेठ क्या कहता कि जिसनेतुम्हें गाय चरानेको दी थी वह तो अब रहा नहीं क्योंकि आत्मा क्षण-क्षणमें नये-नये उत्पन्न होते हैं। जिस आत्माने तुम्हें गाय चरानेको दी थी उसके मिट जानेके बाद तो करोड़ों आत्मा और उत्पन्न हो चुके। अब तुम किससे माँगते हो ? कौन तुम्हें चराई देगा ? तो ग्वाला बड़ा दुःखी हुआ कि यह पैसा भी नहीं देता है और बहाना भी बड़ा दार्शनिक ढूढ़ रहा है। तो दूसरे दिन ग्वालाने गाय को अपने घर बाँध लिया। सेठके घर न भेजी। अब सेठ उस ग्वालाके घर पहुँचा कहा भाई तुम गायको घर क्यों नहीं लाये ! तो ग्वाला कहता है कि सेठ जी जिसको तुमने गाय दी थी वह तो आत्मा रहा नहीं वह तो नष्ट हो चुका। उसके बाद करोड़ों नये आत्मा बन गए और जिसकी गाय थी वह भी आत्मा नहीं रहा तो अब तुम घर बैठो गाय तुम्हें न मिलेगी। तो सेठने उस ग्वालेको दाम दिया, क्षमा मांगी तब गाय मिली तो यों ही समझिये क्षणिकवादमें क्षण-क्षणमें जब नये-नये आत्मा पैदा होते रहते हैं। तो अब देखिये बन्धनमें तो इस समयमैं हूं। कषायोंका दुःख भोग रहा हूं अब अगले ज्ञानक्षणने अगले समयमें कुछ कुछ सम्यग्ज्ञान किया तो दूसरे आत्माने किया फिर तपश्चरण किया तो किसी अन्यने किया, और मोक्ष हुआ तो किसी अन्यको हुआ। तो ऐसे मोक्षमें कौन प्रवृत्त करेगा कि मरें तो हम मोक्षका उपाय करके और मोक्ष हो किसी दूसरेका। तो वहाँ बन्धन मोक्षकी कोई व्यवस्था नहीं बनती।

एकत्व व्यवसायसे एकको बद्ध और मुक्त माननेपर प्रश्नोत्तर-अब यहाँ क्षणिकवादी कह रहे हैं कि यद्यपि वे आत्मा अत्यन्त न्यारे न्यारे और अनेक हैं। एक शरीरमें जितने आत्मा उत्पन्न होते हैं वे सब भिन्न-भिन्न हैं अनेक हैं लेकिन उनमें एकत्वका अभिप्राय मजबूत लग रहा है। मैं वही आत्मा हूँ जो कल था। यद्यपि जो कल था वह मैं नहीं हूँ, तबसे तो अब तक करोड़ों आत्मा उत्पन्न हो गए, लेकिन एकपनेका अभिप्राय रहता है इसलिए उसका यह संकल्प बनता है कि मैं बँधेहुए आत्माको मुक्त करूँगा। तो आत्मा न्यारे-न्यारे है, पर उनमें एक कल्पना बन गयी है कि मैं वही हूँ जो कल था इसलिए अब मोक्षमें प्रवृत्ति करने में कोई दोष नहीं। तो उत्तर देते हैं कि यदि भिन्न-भिन्न अनेक आत्माओंमें एकत्वका अभिप्राय बन गया कि मैं वही एक हूँ जो कल था और इस एकत्वके अभिप्राय बन जानेसे फिर यह बात बन जायगी कि मैं बद्ध आत्माको मुक्त करूँगा। सो मोक्षका प्रयत्न करने लगता है। तब तो इसमें निर्विकल्प की भावना तो नहीं बनी। नैरात्मदर्शन तो नहीं हुआ अर्थात् आत्मा नहीं है कुछ वह

सब ज्ञान ही ज्ञान है और वह एक ही समय रहता है. यह बुद्धि तो अब नही रही और इसी बुद्धिसे तुम मोक्ष मानते हो और बुद्धि करली मैंने एकताकी कि मैं बँधा हूँ, उस बँधे ही आत्माको मुक्त करूँगा, तब नैरात्मदर्शन कहां रहा ? यदि कहो कि शास्त्र पढ़ लेनेसे उस निर्विकल्प क्षणिकका अनुभव हो जाता है तो फिर एकत्वका सिद्धान्त झूठा होगा फिर भी बताओ बद्धकी मुक्तिके लिए प्रवृत्ति कैसे हो ? फिर यह कहना व्यर्थ है कि मोक्ता तो कोई है नही, कौन छूटे ? सब न्यारे-न्यारे आत्मा हैं । तो यद्यपि मोक्ता कोई नही हैं फिर भी जो एकपनेका भाव बन रहा था, मैं वही हूँ जो पहिले था, ऐसा जो मिथ्याभाव बन रहा था उसको दूर करनेके लिए प्रयत्न होता है ।

आत्मद्रव्य माननेपर बन्ध मोक्षकी व्यवस्था भैया ! प्रतीतिसिद्ध सही सीधी बात मानना चाहिये कि जो ज्ञान ज्ञानकी संतति चल रही है, ज्ञानके बाद ज्ञान, ज्ञानके बाद ज्ञान, ये लगातार ज्ञान पैदा हो रहे हैं, इनका उपादानभूत कोई एक आत्मद्रव्य है । उस आत्माके ये ज्ञानगुण हैं और उस ज्ञानका प्रतिसमय नया-नया परिणमन चलता है । आत्मा अविनाशी एक द्रव्य है । यह मानना ही पड़ेगा और जब आत्मा मान लेते हो तो बंध मोक्ष सब बन गया, आत्मा है आज यह मलिन है इसका ज्ञान दूषित है रागादिक सहित है और यह अपने संस्कार अच्छे बनाये, सम्यग्ज्ञान उत्पन्न करे तो इसका यह मलिन भाव दूर हो जायगा और वह मुक्त हो सकता है । तो एक आत्मतत्त्व मानकर फिर यह कहना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है सो तो बात घटित होती है पर आत्मा न माननेपर फिर कहना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है उसकी सिद्धि ही नहीं हो सकती, क्योंकि सारे ज्ञान मान लो, तिसपर भी अगर उनमें आधारभूत कोई एक जीव द्रव्य नही है तो बंध मोक्षके लिए कौन प्रवृत्ति करे ? किसको जरूरत है कि मैं छूट जाऊँ ? वे सब न्यारे न्यारे हैं ही । इससे आत्मा माना, और आत्मा है ज्ञानका पुञ्ज । ज्ञान उसका स्वभाव है और उस ज्ञानका परिणमन होता है । जब शुद्ध परिणमन होता है तो मोक्ष है ।

ज्ञानक्षणोंमें अनुयायी जीवद्रव्यकी प्रसिद्धि – अब यहां क्षणिकपना पुन: कह रहे कि भाई ! एक आत्मा ज्ञानक्षणोंमें अनुयायी कैसे मानलें ? अर्थात् जितने ज्ञान पैदा हो रहे हैं एक शरीरमें, उन ज्ञानोंका आधारभूत आत्मा कोई नही है क्योंकि वे सब ज्ञान न्यारे-न्यारे हैं । एक दूसरेसे विलक्षण हैं । उनकी सत्ता अत्यन्त जुदी-जुदी है । यदि अत्यन्त जुदी-जुदी सत्ता वाले ज्ञानोंमें एक अनुयायी जीवद्रव्य मान लिया जायगा तो फिर सांकर्य और अन्वय हो जायगी । अत: ज्ञानक्षणोंमें कोई एक रहने वाला जीव कैसे माना जा सकता है ? आचार्य उत्तर देते हैं कि यह तो स्वसंवेदनसे सबको प्रतीति हो रही है कि मैं वही आत्मा हूँ । सब जीव मान रहे हैं कि मैं जीव हूं । सबको ध्यान है । अहं प्रत्ययसे सबको जीवकी प्रतीति चल रही है । मैं हूं और सुबह भी मैं था, कल भी मैं था, इस जन्मसे पहले भी मैं था । जो नहीं होता

वह कभी उत्पन्न नही हो सकता। यह वेदान्तियोंका सिद्धान्त है कि जो पदार्थ है हो नही, असत् है, वह असत् कभी उत्पन्न नहीं होता और जो पदार्थ है सत् है उसका कभी विनाश नही होता, चाहे सकलें बदल जायें पर सत्पदार्थका कभी नाश नही हो सकता। जैसे एक मिट्टी है, तो उसका कोई नाश कर सकता है क्या? घड़ा बन गया तो भी मिट्टी रही, खपरियां कर दी तो भी मिट्टी रही, उसे पीस दिया और फैला दिया तो भी पुद्गल स्कंध रहा और कभी वह मिट्टी पेड़रूप भी बन जाय, उसका परमाणु वृक्षरूप हो जाय तो भी पुद्गल तो रहा। जो सत् है उसका कभी विनाश नही हो सकता। एक भी उदाहरण ऐसा न मिलेगा कि जो परमाणु है या कोई चीज है उस चीजका कभी बिल्कुल नाश हो जाय। तो सब अनुभव कर रहे हैं कि मैं हूँ तो जो मैं हूँ जो यह सत् है, इसका कभी नाश नही हो सकता है और न यह कोई नया कुछ है। इससे सिद्ध है कि मैं एक चैतन्यस्वभाव वाला जीव द्रव्य हूँ और अनादिसे हूँ, अनन्त काल तक रहूँगा।

अलौकिक कार्य करनेमें भलाई —भैया! जब मुझे अनन्त काल तक रहना है तो किस तरहसे रहना है सो तो निर्णय रखो! क्या इसी तरह जन्म मरण करते हुए, विषय कषायोंके परिणाम करते भोगते हुए दुःखी रहकर रहना है? इससे तो लाभ है नही तब ऐसा उपाय बनावें कि जिससे जन्म-मरणकी परम्परा मिटे। लोग चाहते हैं कि मैं जीवनमें ऐसा काम कर जाऊँ जो बहुत महत्वपूर्ण हो, किसीने नही किया हो कोई खास काम कर जाऊँ। अरे! जीवनमें खास काम क्या हो सकता है? सो तो निर्णय रखो। भारी सम्पदा जोड़ लेना यह जीवनका खास काम नही। देशमें अपनी नामवरी फैला देना यह भी कोई खास काम नही अथवा परिजनोंसे स्नेह बढ़ाकर उनकी रागभरी बातोंको सुनकर अपने आपमें बड़प्पन महसूस करना यह कोई खासा काम नही। ये सब तो अनादि कालसे इस जीवने अनेक भवोंमें किये। खास काम तो यह है कि मैं अपने स्वरूपको जान जाऊँ कि मैं सबसे निराला केवल ज्ञान-प्रकाशमात्र आत्मतत्त्व हूँ और उसका ऐसा ज्ञान बनाऊँ उसका निरन्तर अनुभव करूँ कि फिर वही सत्यप्रकाश मेरेमें बराबर बना रहे ताकि सब प्रकारके रागद्वेष मोह संकल्प विकल्प दूर हो जायें। इससे तत्काल भी लाभ होता है और भविष्यमें भी इसका बड़ा भारी लाभ है। यही है मोक्षका उपाय। यह बात तो तब बन सकती है जब कोई एक आत्मद्रव्य माना जाय। देखो, सबको अपने विश्वासमें बना हुआ है कि मैं कोई आत्मा सत् हुं, जो विश्वासमें है, जो प्रतीतिमें आ रहा है उसका विरोध कैसे? विरोध तो उसका होता है कि जो बात पाई न जाय!

प्रत्यभिज्ञान प्रत्ययसे शाश्वत आत्मद्रव्यकी प्रसिद्धि – और भी सुनो यदि आत्मा न हो तो व्यवहारमें, व्यापारमें, प्रत्ययभिज्ञान ज्ञान नही बन सकता। प्रत्यभिज्ञान अनेकविध होते हैं जिनमें एकत्व प्रत्यभिज्ञान भी है। एकत्व प्रत्यभिज्ञान कहते हैं

उस ज्ञानको जिस ज्ञानमें यह प्रतीति रहती है कि मैं वही हूँ जो कल था। इसका नाम है एकत्व प्रत्यभिज्ञान यह मनुष्य उस वर्ष भी था और वही मनुष्य अब भी है। तो इस प्रत्यभिज्ञानमें एकत्व विषय है। तो अपने आपमें एकत्वका ज्ञान है कि नही ? किसीको हजार रूपया उधार दिया तो ज्ञान तो बना है ना कि उसे दिया था, मैंने दिया था। तभी तो उसका रोजगार चल रहा है। यदि क्षणिक क्षणिक आत्मा हो तो रोजगार कौर करे ? व्यवहार कैसे बने ? ? क्षथिषवादी यहाँ कह रहे हैं कि वास्तवमें कोई एक आत्मा नहीं है, लेकिन आत्माके बारेमें कल्पना बन गयी है कि मैं वही एक हूँ। तो जब एकत्वकी कल्पना बनगई, जैसे कि बाहरके पदार्थमें भी एकत्वकी कल्पना बन गयी। तो यह प्रत्यभिज्ञान बनने लगा। इस जीवने अपने आपके शरीरमें होने वाले नाना ज्ञानक्षणोंमें एकताकी कल्पान बनायी। मैं वही हूँ जो वर्षोंमें चला आया हूं। और दूसरे जीवों शरीरोंमें भी नाना जीव उत्पन्न हो रहे हैं उनमें भी केवज कल्पना बन गयी कि यह वही है जो वर्षोंसे चला आ रहा। तो ऐसी एकपनेको कल्पना बन जानेसे व्यवहार चलने लगता है। समाधान देते हैं कि यदि यह एकपना केवल कल्पना मात्रका है, प्रत्यभिज्ञान यदि एकत्वका विषय कर रहा है तो जिस समय यह अनुमान किया कि जगतमें जितने पदार्थ हैं वे सब क्षणिक हैं, सत् होनेसे। तो जिस समय पदार्थोंके क्षणिकपनेका निश्चय किया जा रहा है उस समय तो एकत्वका ज्ञान नहीं रहा क्योंकि कल्पनामें एकत्वके अभिप्राय बनानेमें और क्षणिकपनेका ज्ञान करनेमें परस्पर विरोध है। वहाँ प्रत्यभिज्ञान नहीं ठहर सकता। जब क्षणिक है एसा निष्चय किया जाय तो वहाँ वही मैं हूँ जो पहिले था यह कैसे बन सकता है ? कहते हैं किनद बने एकत्वका ज्ञान तो यह भी बात ठीक नहीं है क्योंकि सभी देहातीसे लेकर बड़े-बड़े विद्वानों तक सबको यह एकत्वका प्रत्यभिज्ञान हो रहा है। यदि नहीं मानते जीव, नहीं मालूम पड़ता कि वह एक है तो उसी समय निर्विकल्प दर्शन हो जानेसे फिर सभी राग सबके घूट जायेंगे और सबका मोक्ष हो जायगा।

अहंप्रत्ययतवेद्य आत्मद्रव्यमें बन्ध मोक्षकी व्यवस्था–निष्कर्ष है कि सभी जीवोंका अपने बारेमें यही निर्णय है और प्रतीति है कि मैं वह हूँ जो पहिले था। अब मेरा जो वास्तविक स्वरूप है उस स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो ये रागद्वेष छूटे और मुक्ति हो जाय। जब झूठा ज्ञान लग रहा है। बाह्य पदार्थोंको हम अपना मान रहे हैं तो ससारमें रुलते रहते हैं। गल्ती तो है हमारी, परमैं हूँ कोई एक और गल्ती कर रहा हूं और यही अपनी गल्ती छोड़ देगा यही स्वयं ज्ञानमें आ जायगा, यही समाधिभाव उत्पन्न करेगा तो इसीको मोक्ष हो जायगा। तो एक जीव मानना ही पड़ेगा अपने आपको कि मैं वही एक आत्मा हूं। अब मैं बन्धनमें हूँ और आगे मैं मुक्त हो जाऊँगा। यदि इस अभिप्रायको जैसा कि सब लोग जान रहे हैं कि मैं वही एक हुँ इसे भ्रमकी बात मानने लगे तो फिर जो प्रत्यक्ष दिख रहा है सब सिद्धान्त भ्रान्त हो जायेंगे। जितने भी प्रत्यक्ष हो रहे हों, बाहरमें हो रहे हों, अन्तरमें हो रहे हों सब

भावोंमें एकत्वके ढङ्गसे प्रतीति होती है। जैसे यह चौकी वही है जो पहिलेसे देखते आये हैं, या इसमें नाना चौकियां और पैदा हो रही हैं। हर समयमें एक नई चौकी बन रही है ऐसी क्या बात है? अरे! बिल्कुल स्पष्ट निर्णय है कि चौकी वही है। ऐसे ही अपने बारेमें सबको स्पष्ट निर्णय है कि मैं वह आत्मा हूँ जो पहिले था और आगे भी रहूंगा। बाह्य पदार्थोंमें और अपने आध्यात्मिक भावोंमें एकत्वके ग्राहकरूप ही सारे प्रत्यक्ष चल रहे हैं। तो यह प्रत्यक्ष भ्रान्ति नहीं है। ये सब सत्य हैं, लेकिन ये सब पर्यायरूपमें स्थितियां हैं। द्रव्यदृष्टिसे तो इस चौकीमें जो केवल एक एक परमाणु हैं वे सत्य हैं। परमाणुओंके समूहसे एक पिण्ड बन गयी चौकी और यह चौकी चूंकि बिखर जायगी और चौकीरूप न रहेगी तब तो यह चौकी गलत है, पर इसमें रहनेवाले जो परमाणु हैं वे बराबर सत् हैं। इसी प्रकार आत्मा जो चार गतियोंमें भ्रमण कर रहा है तिर्यञ्च, नारकी, मनुष्य, देव बन रहा है यह तो उसका मायारूप है, पर इन सबमें चलने वाला जो एक आत्मा है वह आत्मा मायारूप नहीं है। प्रत्यभिज्ञानसे वस्तुकी एकता बराबर जानी जा रही है। तो जो अनुभवमें आ रहा उसका भी विरोध किया जाय तब तो जगतमें कोई व्यवहार ही नहीं बन सकता है। इससे मानना होगा कि मैं आत्मा एक हूँ और इस समय अपने विपरीत भावोंके कारण बद्ध हूँ और सम्यग्ज्ञान करके अपने स्वरूपकी सावधानी करके जब अपने आपको सम्हाल लूँगा तो मुक्त हो जाऊँगा।

आत्मामें विशुद्धज्ञानोत्पत्तिकी मोहरूपता—मुक्त होनेका मतलब यही तो है कि जो मैं रागसे, स्नेहसे जकड़ा हुआ हूँ वे रागके बन्धन टूट जायें। मैं अपने ही भावोंसे बँधा हुँ, मैं अपने ही स्वभावको जान लूँ और उन रागादिक भावोंको तोड़ दूं लो मुक्त हो गया। कोई स्त्रीसे बँधा है क्या? हम तो यहां सब भाइयोंको अकेले ही देख रहे हैं। स्त्रीसे बँधे हुए कोई नजर नहीं आ रहे हैं। सभी स्वतन्त्र बैठे हैं। लेकिन स्त्रीके बारेमें जो आपके विकल्प चल रहे होंगे—कि अमुक मेरी स्त्री है, वह बड़ी विनयशील है आदिक। तो आप अपने इन भावोंसे ही बँधे हैं न कि स्त्रीसे। क्या कोई संस्थासे बँधा है? संस्थासे कोई नहीं बँधा है, पर उस संस्था सम्बन्धी जो विकल्प बना लिए हैं कि मैं इस संस्थाका अधिकारी हूँ इसकी सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है आदिक इन भावोंसे आप बँधे हैं न कि संस्थासे। तो इस राग भावका बन्धन मिटाना है, इसीका नाम मुक्ति है। यह बात तब सम्भव है जब एक आत्माको माना जाय कि यह मैं एक हूं, अभी बँधा हूँ, ज्ञान करूँगा तो मैं मुक्त हो जाऊँगा। तो एक आत्मा मानकर फिर कहो कि निर्मल ज्ञान हो जानेका नाम मोक्ष है, तो ठीक बन जायगा।

अनेक भाव होनेपर भी अनुभूयमान आत्मैकत्वकी प्रसिद्धि—देखिये! आत्माका एकत्व अर्थात् सबको अपना अपना आत्मा एकत्वरूपसे अनुभवमें आ रहा है, इसमें सुख दुख विकल्प आदि अनेक भाव हो रहे हैं, इस अनेकताके कारण यदि अनु-

भवमें आये हुए एकत्वका विरोध करोगे तो इस भेदक्षणिकवादमें न तो ज्ञानक्षणोंका स्वरूप बन सकेगा और न नीलादिक अर्थोंका स्वरूप बन सकेगा। ज्ञानमें तीन रूप होते हैं (१) ग्राह्यरूप (२) ग्राहकरूप और (३) संवेदनरूप। अर्थात् पूर्वज्ञानसे बोधरूपता ग्रहणमें आती है पदार्थोंसे आकार ग्रहणमें आता है यह तो ग्राह्यरूप और ज्ञान ज्ञाननान्तरको बोधरूपत्व सौंप देता है ग्रहण कराता है, ज्ञानसे बोधरूपताको ग्रहण करता है, ज्ञान पदार्थोंका आकार ग्रहण कराता है यह है ग्राहकरूप तथा ज्ञान स्वरूपत: जाननरूप है, सो संवेदन करना स्वरूप ही है यह है सवित्तिरूप। तो इन तीनों विकल्परूपोंसे अध्यासित (प्रकम्पित) ज्ञानमें अनेकता आ गई सो अनेकत्वके साथ निरंश ज्ञानकी इकाईके साथ विरोध हो जानेसे ज्ञानका स्वरूप ही न रहा। इसी प्रकार अनुभूयमान एकत्वका अनेकत्वसे विरोध माननेपर पदार्थका भी स्वरूप न बनेगा क्षणिकवादमें पदार्थ है नील, कृष्ण, कटु, मधुर आदि निरन्वय भावक्षण। तो उनमेंसे उदाहरणार्थ एक नीलक्षणको ले लीजिये। नीलक्षणमें स्वकार्यकर्तृत्व और परकार्याकर्तृत्व ये दो विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं अर्थात् नीलक्षण उत्तरनीलक्षणको तो उत्पन्न करता है और पीतादिक्षणोंको उत्पन्न नहीं करता। तो इस तरह कर्तृत्व और अकर्तृत्व परस्पर दो विरुद्ध धर्मोंसे अध्यासित नील स्वलक्षणमें निजी एकत्वका, निरंश एकास्तित्वका विरोध हो जायगा, तो नीलक्षणका स्वरूप ही क्या रहा ? फिर तो तुम्हारे सब सिद्धान्तका लोप हो जायगा। अत: आत्म में अनेक भाव होनेपर भी स्वयं के अनुभूयमान एकत्वकी सिद्धि मानना ही पड़ेगी।

सुषुप्तावस्थामें ज्ञानके सद्भाव व अभावकी चर्चा—इस प्रकरणमें तीन सिद्धान्तोंकी बात चल रही है - एक तो वैशेषिक जिनका विशेषवादका सिद्धान्त है और एक क्षणिकवादी जो क्षण-क्षणमें आत्माको, सभी पदार्थोंको उत्पन्न होना मानते हैं, और एक स्याद्वादी जो कि द्रव्योंको नित्यानित्यात्मक मानते हैं। विशेषवादमें ७ प्रकारके पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं द्रव्य गुण, पर्याय, सामान्य, विशेष, समवाय और ७वां पदार्थ है अभाव। इस सिद्धान्तके अनुसार आत्मामें ज्ञानस्वरूप नहीं है। आत्मा ज्ञानरहित होता है, उसका स्वरूप चैतन्य है केवल। ज्ञान न हो और चैतन्य हो मात्र ऐसा क्या स्वरूप हो सकता है ? इस सम्बन्धमें उन्होंने यह कल्पना की कि ज्ञानका काम तो जानना है, जिसमें ये सब पदार्थ समझमें आते हैं। यह अमुक चीज है, यह इस आकार प्रकारकी है और चैतन्यके मायने है कि यह ज्ञान तो न रहे किन्तु साधारण चेतना रहे। कुछ ऐसी योग्यता है कि जिसमें ज्ञान जुड़े तो ज्ञान जुड़कर फिर सब पदार्थ जानते रहें। कुछ और थोड़ा सीधा समझना हो तो कुछ कुछ अंदाजा किया जा सकता है दर्शनसे। जैसे कि स्यद्वादियोंने, जैनोंने दर्शनगुण माना है तो दर्शनगुणमें क्या होता है कि ज्ञान नहीं होता किन्तु सामान्यतया चेतना बनी रहती है, तो उससे कुछ समानताका स्वरूप रखने वाला वैशेषिकोंका चैतन्य है। ये वैशेषिक सोये हुएकी अवस्थामें ज्ञान नहीं मानते या तब ज्ञानका तिरोभाव मानते। हां चैतन्य

तो आत्माका स्वरूप है सो वह रहता ही है। इस दृष्टिसे सोये हुयेकी हालत जो ऊपर से जो दुनिया देखती है कि यह पुरुष कुछ ज्ञान नही कर रहा है सो ज्ञान नहीं है, पर हाँ इसके अन्दर चेतना जरूर है। जग जानेपर वह फिर जानने लगता है। मरे हुए और सोये हुए इन दोनों प्रकारके पुरुषोंमें फर्क तो है। तो सोये हुयेमें चेतना है, ज्ञान नहीं है और मरे हुएमें ज्ञान भी नही है और चेतना भी नही है ऐसी दो बातोंका ये वैशेषिक भेद डालते हैं।

सर्वथा अभिभूत ज्ञानमें स्वकार्यकारिताका अभाव— इस प्रसङ्गमें यह बात चर्चामें आयी थी कि सोये हुएमें यदि ज्ञान न हो तो फिर जग जानेपर वह शयन का अनुभव कैसे बता देता है ? इस सम्बन्धमें वैशेषिकका कथन है कि सोये हुएमें ज्ञान तो नही रहा पर चैतन्य तो रहा, स्वपरप्रकाशक स्वभाव तो रहा, तो उस स्वभावके ही कारण उसमें सोई दशाकी बातका निरूपण करनेकी सामर्थ्य आ जाती है, इसका समाधान करते हैं कि यह बात ठीक नही, क्योंकि अनुभव करना, जानना सोये हुएमें भी तो चलता रहता है। सोया हुआ मनुष्य भी तो अन्दर ही अन्दर अपने उन विकल्पोंसे जैसा कि भीतरी संस्कार है कुछ न कुछ चिन्तन करता रहता है, उसीका ही तो रूप यह स्वप्न आता है। सोये हुएमें जो स्वप्न आता है, बड़ी बड़ी बातें देख ली जाती हैं तो वह क्या चीज है ? मनकी ही तो कल्पनायें हैं। ज्ञानका ही तो काम है। और चूँकि सर्वत्र अभिभूत अर्थ ही अपना कार्य करता है सो स्वापदशायें भी अपनी सीमामें अनभिभूत ज्ञान है। वही ज्ञान ज्ञान कर सकता है जो अनभिभूत हो, उस ही ज्ञानमें यह सामर्थ्य है कि जाननका कार्य कर सके। यदि अनभिभूत ही पदार्थ जाननका कार्य करे यह न मानोगे तो फिर जब किसी आगके पास कोई प्रतिबन्धक मणि रख दी जाय तो भी आगको जलानेका काम करना चाहिये। प्रति-बन्धक मणि मंत्रके आगे आग क्यों अपना काम नही करती ? यद्यपि मणिसे आग अभिभूत हो गयी, उसकी शक्ति रुक गई यह तो अविरुद्ध है फिर भी अभिभूत होनेपर भी कार्य करने वाला मान लिया तो आग भी वहाँ जलानेका काम करे। चाहे कोई मत्रवादी हो या कोई विरुद्ध दवा लगा दी गई हो फिर भी जला दे, पर वहां वह आग जलाती तो नही ? अथवा जब कोई अनध्यवसाय ज्ञान होता है जैसे कोई मनुष्य चले जाते हुएमें किसी दूसरी तरफ ख्याल किए हुए बड़ी जल्दी गमन कर रहा है तो रास्ते में पैरके नीचे कोई तिनका छू गया तो थोड़ासा उसे ऐसा ख्याल आता है कि छू गया पर उस तरफ कोई ध्यान नही तो उसका निर्णय नही रहता कि क्या छू गया। तो अब हुआ क्या कि उस समय उसका ज्ञान अभिभूत था अर्थात् दूसरी जगह जो चित्त लगा हुआ है, उस दूसरी जगह चित्त लगा रहनेसे उसे अब अन्य चीजका ज्ञान रुका हुआ है, पर रुका हुआ भी ज्ञान कार्य करने वाला तो वहां भी स्पष्ट सम्वेदन होना चाहिये, ज्ञान होना चाहिये कि क्या चीज थी जो पैरमें लग गयी ? पर ज्ञान तो नहीं होता। यदि यह कहो कि उस समय मन और जगह लगा है इसलिए स्मरण नही

होता कि पैरमें क्या छू गया है ? तो कहते हैं कि यही बात तो सोई हुई अवस्थामें है. सोई हुई अवस्थामें मिद्धत्व आ गया अर्थात् तेज निद्राके कारण वह मूर्छितसा हो गया है इस कारण सोई हुई अवस्थामें उसे स्मरण नहो रहता है।

स्वाप (शयन) अर्थका निरूपण – और भी देखिये ! अनध्यवसायके विषयका निरूपण नही होता, किन्तु सोनेके अर्थका निरूपण भी हो सकता है क्योंकि जगनेपर सबको यह ख्याल आ जाता कि मैं इतने समय तक निरन्तर सोया हूं। देखो मैं अर्द्धरात्रिमें खूब निरन्तर सोया फिर कुछ जगा, फिर सोया, फिर जगा, लगातार सो नही सका, और इतनो देर मैं लगातार सोता रहा। ऐसा ख्याल है ना जगनेपर तो इससे सिद्ध है कि सोनेका भी उसे अनुभव है। जो मनुष्य सोया रहता है उसे सोने का भी अनुभव रहता है कि मैं सोया हुआ हूँ। उस समय यद्यपि सोया हुआ हूँ यह विकल्प नही करता, लेकिन जगनेपर सोचता है कि मैं खूब सोया हुआ था। तो जिस चीजका अनुभव नही होता उसका स्मरण नही हुआ करता। यदि सोनेका अनुभव नहीं होता उसे सोई हुई हालतमें तो सोनेसे उठनेके बाद मैं खूब सोया, ऐसा स्मरण नही बन सकता था। जब जगनेपर यह स्मरण होता कि मैंने खूब सोया तो इससे सिद्ध है कि सोये हुएमें उसे सोनेका अनुभव था। हां, सोनेका जिस तरहका अनुभव होता है वही अनुभव था। कोई पुरुष आज ख्याल करता है कि कल मैंने यह खाया था तो कल खानेका उसे अनुभव था ना, तभी तो आज ख्याल करता है। पहिले जिस चीजका अनुभव किया हो उसका ही तो ख्याल आता है। बिना अनुभव की हुई चीज का ख्याल नही आया करता। तो सोनेसे उठकर जगे हुए पुरुषको जो यह ख्याल आता है कि मैं आज खूब सोया, तो सोनेका अनुभव भी चलता रहता था तब उसे ख्याल आया। यह बात नही है कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञान नही रहता है यह नियम है कि अनुभव की हुई बातका ही ख्याल आया करता है। यदि बिना अनुभव किए हुए भी सोनेका ख्याल आ जाय अर्थात् यह माना जाय कि सोई हुई हालतमें सोनेका अनुभव तो न था पर जग जानेका ख्याल आ गया कि मैं खूब सोया था। तो बिना अनुभव किए यदि ख्याल आने लगे तो सभी पदार्थोंका अटपट बिढङ्गा खूब ख्याल आये, क्योंकि तुमने यह मान लिया कि अनुभव किए बिना भी स्मरण हो जाया करता है, तो घट, पट, घर आदिक पदार्थोंका अनुभव तो बिल्कुल न हो और स्मरण आने लगे, पर ऐसा होता तो नही, इससे सिद्ध है कि सोई हुई हालतमें भी ज्ञान बराबर रहता है। अब वहां तेज निद्राके कारण इन्द्रिय अभिभूत हो गई हैं, इन्द्रिय काम नही कर रही हैं, मत करें इन्द्रिय काम, लेकिन जो मन दबा हुआ होनेपर भी भीतर ही भीतर कुछ न कुछ अनुभव करता है। सोनेका भी एक अनुभव है।

सुषुप्तकी तरह मत्त व मूर्च्छित दशामें ज्ञानके अभावका निराकरण – अब यहाँ शंकाकार कहता है कि सोये हुएमें भी ज्ञान रहता है यह सिद्ध करनेके लिए

जो तुमने पागल और मूर्छित पुरुषका उदाहरण दिया कि जैसे पागल लोगोंके भी ज्ञान बिगड़ जानेपर भी, कुछ ज्ञान बना ही तो रहता है, मूर्छित हो जानेपर भी, जिसने मदिरापान कर लिया और वह मूर्छित हो गया तो उसके भी मदवेदनाका अनुभव बना ही रहता है। इसी प्रकार सोये हुएमें भी ज्ञान बना रहता है तो यह दृष्टान्त झूठा है। पागलके अथवा मूर्छित पुरुषके ज्ञान रहता ही नहीं है। तो इस आशंकापर उत्तर देते हैं कि मूर्छित पुरुषमें भी ज्ञान चल रहा है। कोई मदिरापानसे बेहोश हो गया उस हालत में भी उसमें बराबर ज्ञान चल रहा है यदि ज्ञान न चलता होता तो जब बेहोशी मिटती है होशमें आता है तो वह यह अनुभव करता है और मैंने इन चार घंटोंमें कुछ भी अनुभव नहीं किया, कुछ भी नहीं समझा। अरे कुछ भी नहीं समझा इसका अनुभव उस बेहोशी अवस्थामें चल रहा था तब तो अनुभव किये हुएका यह स्मरण कर रहा है क्योंकि जितने भी स्मरण होते हैं वे सब अनुभवपूर्वक होते हैं। इससे यह मानना चाहिये कि जिस अनुभवके होते हुए आत्मा ऐसा अनुभव करता है कि मुझे कुछ भी अनुभव नही हो रहा है उस अवस्थामें भी अनुभव तो है ही। जैसे कोई पुरुष कहे कि आत्मा नहीं है, मैं नहीं हूँ, तो यह तो बतलावो हम यह जान रहे कि नहीं कि मैं नहीं हूँ। बस ऐसा जानन जिसमें चल रहा है वही तो आत्मा है। कोई पुरुष कहे खूब जोर से चिल्लाकर कि मेरे जीभ ही नहीं है तो कोई मान लेगा क्या इस बातको? अरे जिससे बोल रहा है वही तो जीभ है। इसी प्रकार जिस ज्ञानसे यह मनुष्य कहता है कि मेरा आत्मा नहीं है, अरे वही ज्ञान तो आत्मा है। तो इसी तरह जो अनुभव कर रहा है कि मेरे कुछ अनुभवमें ही नहीं आ रहा तो कुछ तो अनुभवमें हैं। किसी बातको सुनकर किसी कठिन चर्चाको सुनकर कोई श्रोता कहे कि हमारी समझमें कुछ नहीं आ रहा है तो क्या यह बात सही है? और मेरी समझमें नहीं आ रहा यह तो समझमें आता कि नहीं? यह भी एक समझ है। मेरी समझमें कुछ नहीं आ रहा इसका भी नाम समझ है यह समझ तो आ रही। तो मूर्छित अवस्थामें कुछ अनुभव नहीं हो रहा बाहरी बातोंका, वहाँ मद वेदनाका तो अनुभव हो रहा है। अरे उससे वह दुःखी है, तो जितने दुःखी हों उन सबका यह ही इलाज किया जाय कि इसे मूर्छित करो। पर मूर्छित होनेमें दुःख कम नहीं होता है बल्कि दुःख बढ़ जाता है। वैसे साधारणतया कभी कभी डाक्टर लोग ऐसा बता देते हैं कि इसको अगर नींद नहीं आती है तो यह दवा सुँघा दो, इसका दुःख मिट जायगा। अरे दवा सुंघानेसे वह मूर्छित हो गया उसे बाहिरी होश न रहा तो लोग समझते हैं कि अब इसको वेदना नहीं है, पर मूर्छित हुएकी दशामें उस वेदनासे भी अधिक वेदना है जिसको सह भी रहा है और बता भी नहीं सकता है। तो मूर्छित अवस्थामें भी अनुभव चला करता है, सोई हुई अवस्थामें भी अनुभव चला करता है। जैसा स्मरण जगनेपर या होश आनेपर होता है। जगनेपर तो यह स्मरण चलता है कि मैंने खूब सोया या कुछ कुछ सोया। और होश आनेपर यह स्मरण होता है कि मैंने तो जैसा बाहरी अनुभव चलता था वैसा कुछ भी अनुभव

नहीं किया तो सब दशाओंमें ज्ञान बराबर अपना काम कर रहा है।

सुषुप्तमें ज्ञानके अभावकी सुप्तके अभावान्वित ज्ञानसे व ज्ञानाभावसे सिद्धिका अभाव – यहाँ इस प्रसंगमें दो बातें चल रही हैं परस्परमें। शंकाकार तो मानता है कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञान नहीं रहता है और स्याद्वाद कहता है कि सोई हुई अवस्थामें भी ज्ञान रहता है। अच्छा बताओ तो सही कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञानका अभाव है इस बातको क्या सोया हुआ आदमी जान रहा है या पासमें बैठा हुआ कोई दूसरा जान रहा है? ये दो प्रश्न किये। कोई मनुष्य सो रहा है और उसमें बतलाते हो कि ज्ञान नहीं है अब ज्ञानका अभाव हो गया है तो उसमें ज्ञानका अभाव है इस बातको कौन समझ रहा है सो तो बताओ? यदि कहो कि सोया हुआ पुरुष है वही जान रहा है कि ज्ञानका अभाव है तो वह सोया हुआ आदमी क्या जिस ज्ञानका अभाव है उस ही ज्ञानसे जान रहा है कि मेरे ज्ञानका अभाव है? किस ज्ञानसे? जिस ज्ञानका अभाव है, क्या उसी ज्ञानसे समझ रहा कि मेरे ज्ञानका अभाव है या ज्ञानका अभाव होनेसे समझ रहा वह सोया हुआ आदमी कि मेरे ज्ञानका अभाव है या उनसे अलग किसी अन्य ज्ञानसे समझ रहा है कि मेरे ज्ञानका अभाव है? यदि सोया हुआ आदमी जिस ज्ञानका अभाव है उसी ज्ञानसे समझ रहा है कि मेरे ज्ञान नहीं है तो यह तो बड़ी विरुद्ध बात कर रहे हो। उस ही ज्ञानका तो अभाव है और उस ही ज्ञानसे वह समझे कि मेरे ज्ञान नहीं है इसे कौन मान लेगा? यदि कहो कि ज्ञानका अभाव है इस कारण समझ रहा है कि मेरे ज्ञान नहीं है तो यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि ज्ञानका काम है जानना। और जाननेमें आता है कोई सत पदार्थ। तो ज्ञानके अभावसे जानना नहीं बनता। ज्ञानसे जानना बनता। ज्ञानका अभाव होनेसे मेरे ज्ञान नहीं है ऐसा नहीं जाना जा सकता। ज्ञानसे ही जाना जा सकता कि मेरे ज्ञान नहीं है अथवा मेरे ज्ञान है न समझनेसे यह नहीं परखा जा सकता कि मेरे समझमें ही नहीं आता। अरे कोई समझ है उस समझके द्वारा ही आप समझते हैं कि मेरी कुछ समझमें ही नहीं आ रहा है। ज्ञानके अभावसे ज्ञानाभाव निश्चित नहीं किया जा सकता। अगर ज्ञानाभावसे ज्ञानका असद्भाव जान लिया तो ज्ञानाभावका ही नाम ज्ञान बनागया तो नाममें ही वहाँ फर्क रहा। बात यह है कि ज्ञानसे ही तो जाना जा सकता कि मेरे अच्छा ज्ञान है, मेरे कम ज्ञान है, और ज्ञानसे ही यह जाना जा सकता कि मेरे कुछ ज्ञान ही नहीं हो रहा।

सुषुप्तमें ज्ञानके अभावकी सुप्तके ज्ञानान्तरसे सिद्धिका अभाव—सोये हुएमें सोया हुआ ही मनुष्य यदि अपने ही ज्ञानके अभावको जानता है तो किस साधन से जानता है यह पूछा जा रहा है? यदि कहो कि अन्य ज्ञानसे वह सोया हुआ मनुष्य ज्ञानके अभावको जान रहा कि मेरे ज्ञान नहीं है, इस प्रकारसे सोया हुआ जान रहा है किसी अन्य ज्ञानसे तो वह अन्य ज्ञान क्या उस सोई हुयी अवस्थामें हो रहा है या जगने पर प्रबोध हुएके ज्ञानसे या पहिले जगे हुएके ज्ञानसे हो रहा है? यदि कहो कि सोये

हुएमें ही उसका ज्ञान ऐसा चल रहा है कि मेरे ज्ञान नहीं है तो ठीक है। अब ज्ञान बिल्कुल न रहा यह बात तो न रही। एक ज्ञानसे यह भी जान रहा सोया हुआ पुरुष कि मेरे ज्ञानका अभाव है। यदि कहो कि पहिले जग रहा था और सोनेके बाद कुछ चेत गया तो पूर्व जगनेके और सुप्तोत्थ चेतनेके कालमें होने वाले जो दो ज्ञान हैं-पहिले जगे हुएका ज्ञान और अब सो कर उठे हुएका ज्ञान, इन दोनों ज्ञानोंसे वह जान रहा है बीच उसके ज्ञान न था। तो समाधान देते हैं कि जब जग रहे थे तबका ज्ञान तो तब ही था और जब सोकर उठा हैं तबका ज्ञान तब ही है। तो दोनों दशाओंमें होने वाले ज्ञानोंके समय सोये हुएके समयकी बात तो आयी नहीं, फिर जान कैसे गया। जब ज्ञान में न आये और तब भी जान जाय, याने जगनेके ज्ञानमें भी सोये हुएकी दशा नहीं आयी जगकर उठे हुएके ज्ञानमें भी सोये हुएकी दशा नहीं आयी और तिसपर भी, न आनेपर भी, अनुपलब्धलक्षण प्राप्त होने पर भी यदि सोये हुएके ज्ञानभावका ज्ञान हो जाय तो प्रत्यक्षसे ही परलोकका अभाव भी सिद्ध करलो, फिर अनुमान आदिककी क्या जरूरत है ? यों तो अन्य सभी प्रमाणोंका उच्छेद हो जायगा। अतः प्रतीति सिद्ध बातका अपलाप नहीं करना चाहिये।

आत्माकी अविनाशिता और ज्ञानमयता —आत्मा है वह एक भवमें एक शरीरमें कई वर्षों तक भी रहता है जैसे मनुष्यकी जिन्दगी ८० वर्षकी है, तो वह ८० वर्ष एक ही आत्मा है, न तो वहाँ नये-नये आत्मा पैदा हुए और न यही है कि आत्मामें ज्ञान नहीं है जब ज्ञानका संयोग होता है तब आत्मा जानता है, सोई हुई अवस्थामें ज्ञानका संयोग ढीला हो जाता है, इसलिए सोई हुई हालतमें आत्मामें चैतन्य तो है पर ज्ञानका काम नहीं है। ये दोनों बातें सही नहीं हैं। सारे भवमें एक ही आत्मा है और इस एक ही भवमें क्या यह भव भवमें एक यही आत्मा है। जितने आत्मा हैं वे सब सदा रहते हैं और अपने अपने कर्मानुसार संसारमें जन्म मरण किया करते हैं। वे सब आत्मा ज्ञानमय हैं। आत्मामेंसे एक ज्ञानस्वरूप न मानें तो आत्मा का सद्भाव नहीं रह सकता। ज्ञानसे ही रचा हुआ यह आत्मा है जिसे वैशेषिक चेतन कहते हैं वह चेतन क्या है ? जब ज्ञान विकल्पमें नहीं रहता, रागद्वेष कल्पनाओंमें नहीं रहता उस समय ज्ञानकी ऐसी विशुद्ध दशा रहती है कि जहाँ एक केवल ज्ञातृत्व रहता है, केवल जाननहारपना रहता है। उस केवल जाननहारपनेकी स्थितिमें विकल्प नहीं है, सङ्कल्प नहीं है रागविरोध नहीं है, इससे वे यह नहीं पकड़ पाते कि यहां ज्ञान भी हो रहा है क्योंकि लौकिक जन ज्ञान इस हीको माना करते कि जहाँ विकल्प उठे, विचार चले उसे ज्ञान समझते हैं, पर यह तो ज्ञान है ही नहीं। यह तो ज्ञानमें उपाधिकृत दोष आया है।

उदाहरणपूर्वक आत्मामें सर्वदा ज्ञानके सद्भावका प्रतिपादन—जैसे दो चीजें मिलकर कोई एक रूप बदल लें, उस बदली हुई हालतमें भी सूक्ष्म दृष्टिसे दो

चीजें हैं। अगर वे रूप बदल लें तो न उसका शुद्ध रूप रहा न दूसरेका शुद्ध रूप रहा, उसने अपनी बदल कर ली। इसी तरह ज्ञानमें रागका सम्पर्क जुड़ गया। चूंकि आत्मा एक ही है और तन्मय दोनों ही हैं तो ज्ञान और राग इनके सम्पर्कसे एक कल्पना बन बैठी। उस कल्पनामें सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करें तो वहाँ भी बड़ा भेदज्ञान कर सकते हैं कि इसमें इतना मालिन्य अंश तो रागका है और यह जो जाननका शुद्ध अंश है वह ज्ञानका है लेकिन सूक्ष्म दृष्टिपर कौन ध्यान देता है। लोग सीधा ही यह जान जाते हैं कि ये कल्पनायें, ये विकल्प, ये घुड़दौड़, यह सब ज्ञानका ही काम है पर ज्ञानका शुद्ध काम केवल जानन है। जैसे आंखोंका काम देखना है और आँखोंपर यदि लाल चश्मा लगा दिया जाय तो वे वस्तुयें लाल दिखती हैं। तो लाल निरखना यह आँखोंका शुद्ध काम नही है। उसमें भी केवल निरखना आंखका काम है। जो ललामी रूप निरखा गया उसका कारण चश्माका सम्पर्क है। अथवा कोई हरा रङ्गीन वल्ब लगा दिया तो कमरेमें हरा हरा प्रकाश छा गया। अब उस प्रकाशके बीच यह निर्णय करें कि प्रकाश किसका नाम है। जो यह हरा-हरा दिखता है यह तो रङ्ग है प्रकाश नही है। तो प्रकाश कोई ऐसी अनिर्वचनीय चीज है कि हरे रङ्गके होनेपर भी वहां जो कुछ उद्योत है बस उद्योतमात्र प्रकाशका काम है, हरा होना प्रकाशका काम नही है। इसी तरह जानन अंश होना यह तो ज्ञानका काम है अब उसमें राग स्नेह विकल्प आदिक जो स्थूल रूप हो रहे हैं, ये ज्ञानके काम नही हैं। तो जब ज्ञान अपने स्थूलरूप को छोड़ देता है और एक विशुद्ध जानन अंशमें रहता है उस स्थितिमें चूंकि विकल्प नही रहे सो यह ही मान लिया वैशेषियोंने कि आत्मामें ज्ञान है ही नहीं। आत्मामें तो मात्र चैतन्य है। लेकिन ज्ञान दर्शनके अतिरिक्त चैतन्यस्वरूप क्या ?

दर्शनज्ञानरूपताके बिना चैतन्यस्वरूपकी असिद्धी– चैतन्यसे आत्मा चेतता है तो चेतता है यह सामान्य विशेषात्मक है। कुछ भी बात हो, कोई भी पदार्थ हो वह सामान्य विशेषात्मक होता है। तो चेतना भी सामान्य विशेषात्मक हुई तो उसमें जो सामान्य चेतना है उसका नाम दर्शन है, जो विशेष चेतना है उसका नाम ज्ञान है। ज्ञानको छोड़ कर आत्मा अपनी सत्ता नहीं रख सकता है, अतएव आत्मा किसी भी परिस्थितिमें हो, चाहे मूर्छित दशामें हो चाहे सोई हुई अवथामें हो अथवा पागल अवस्थामें हो, सभी अवस्थामें आत्मा ज्ञानसहित ही रहता है आत्मा ज्ञानारहित नहीं होता। इससे यह मानो कि विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न होनेका नाम है आत्माका मोक्ष। न कि ज्ञानके विनाशका नाम है आत्माका मोक्ष। तथा यह भी मानो कि विशुद्ध ज्ञान होनेपर आगे विशुद्धज्ञान विशुद्धज्ञान ही चलता रहता है और उन समस्त विशुद्ध ज्ञानों का आधारभूत एक आत्मा है। मोक्ष किसका हो ? एक आत्माका। किससे मोक्ष हो ? अशुद्ध ज्ञानसे। जो ज्ञान सराग चलरहा था तो उन रागोंसे मोक्ष होना है। ज्ञान तो अब वह शुद्ध हो गया है तो ज्ञानके शुद्ध होते ही आनन्द भी शुद्ध होता है, शक्ति भी शुद्ध रहती है और दर्शन भी शुद्ध रहता है तो अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और

अनन्त आनन्द, इस चतुष्टयस्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है इसमें रंच भी सन्देह की गुञ्जाइश नहीं है।

पार्श्वस्थ पुरुषद्वारा सुप्तपुरुषके ज्ञानाभावकी असाधना— प्रकरण यह है कि शङ्काकार मान रहा है कि सोये हुए मनुष्यमें ज्ञान नहीं रह । और यथार्थता यह है कि आत्मा तो अविनाशी है, वह तो सदाकाल है। सोये हुए मनुष्यमें भी ज्ञान है और यह मनुष्य मरण कर जाय, अगले भवमें जाय तब भी ज्ञान रहेगा, इसके पहिले भवमें भी ज्ञान था। आत्माका अविनाभावी धर्म है ज्ञान। ज्ञान न हो तब आत्माका कुछ स्वरूप ही नही है। जो लोग मानते हैं कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञान नही रहता उनसे तीन विकल्प किये गए थे, जिनमें दो विकल्पोंका तो खण्डन कर दिया। अब पूछते हैं कि जो सोया हुआ है उसमें ज्ञान नही है इस बातको जानने वाले क्या पासमें बैठे हुए कोई मनुष्य होते हैं ? सोये हुए मनुष्यमें ज्ञानका अभाव है, इसे सोया हुआ तो जान न सकेगा। उसके दोनों विकल्प तो निराकृत कर दिये। अब पूछ रहे हैं कि क्या पासमें बैठा हुआ कोई मनुष्य सोये हुएके उस ज्ञानके अभावको जानते हैं, यह भी बात युक्त नही है। क्योंकि सोये हुएमें ज्ञान नही है, इस बातको सिद्ध करने वाला तुम्हारे पास कोई हेतु नही है। हेतुप्रसिद्धकारणानुपलब्धि, स्वभावानुपलब्धि, व्यापकानुलब्धि या विरुद्धविधि ये चार होते हैं अर्थात् ज्ञानभावका कारण न दीखे, स्वभाव नजर न आये तो कह सकते कि ज्ञान नही है। अथवा ज्ञानके विरुद्ध कोई बात समझमें आये तो कह सकते कि ज्ञान नही है, पर ये कोई साधन ध्यान में नही आ रहे इस कारण पासमें बैठे हुए मनुष्य भी सोये हुएके ज्ञानके अभावको जान ले यह सम्भव नही है।

सुप्त पुरुषके ज्ञानके सद्भावकी सिद्धि – शङ्काकार कहता है—तो यों तो सोये हुएमें ज्ञान है, इसको सिद्ध करने वाला भी हेतु नही है। कैसे सिद्ध करोगे कि सोये हुए पुरुषमें ज्ञान है ? उत्तर देते हैं कि देखो उस पुरुषमें श्वासोच्छ्वास विदित हो ही रहा है। बल्कि जगे हुए मनुष्यसे भी अधिक उसका श्वास निकलता है। सोये हुए मनुष्यके नाकसे बहुत तेज श्वास निकलती है और कितने ही लोग तो घुर्राहटके साथ श्वास लिया करते हैं। एक लक्षण तो यह जाना गया। दूसरा लक्षण यह जाना गया कि शरीर गरम है। तीसरेमें आकार विशेष समझा गया। ऐसे और भी अनेक लक्षण हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि इसमें ज्ञान है, क्योंकि ज्ञान न हो तो ये बातें नही आ सकती हैं। और ज्ञान होता है स्वसंविदित। ज्ञान अपने आपको जानता रहता है। तो स्वसम्वेदी ज्ञानके अविनाभावी रूपसे निश्चय किया गया, यह लक्षण दिख रहा है इससे जाना जाता है कि सोये हुए पुरुषमें भी ज्ञान है। देखिये ! जगने वाले जो और लोग हैं इनमें ज्ञान है यह तुम कैसे जानते हो ? इसी तरह तो जानते हैं ना कि इन जानने वाले पुरुषोंमें भी श्वासोच्छ्वास निकल रहा है। इनके

शरीरमें गर्मी है, यह चलता फिरता भी है। इसमें आकार विशेष भी है। इससे ही तो समझते हैं कि जगने वाले इन दूसरे लोगोंमें ज्ञान है। तो जो लक्षण दूसरे जगने वालोंमें पाये जाते हैं ज्ञानको सिद्ध करनेके लिये वे ही लक्षण सोये हुएमें भी हैं।

सुप्त और मृतके अन्तरसे सुप्तमें ज्ञानकी सिद्धि—कोई मुर्दा है जिसमेंसे जीव निकल गया, जिसे लोग निःशंक होकर जला देते हैं, सभी लोग समझते हैं कि इसमें ज्ञान नहीं रहा, क्योंकि श्वासोच्छ्वास नहीं है, पर सोये हुएमें तो श्वासोच्छ्वास चल रहा है, मुर्दाके शरीरकी गर्मी बन्द है, अब उष्णता नहीं रही, पर सोये हुए मनुष्यके शरीरमें उष्णता है ना, और मुर्दाका आकार कान्तिहीन होता है, मगर सोये हुए मनुष्यका चेहरा कान्तिहीना नहीं नजर आता। तो इन सब बातोंसे जान जाते हैं कि सोये हुए मनुष्यमें भी ज्ञान है। जान कहो, ज्ञान कहो एक ही बात है। ज्ञानका बिगड़कर जान रूप बन गया, जैसे कोई कहता है कि अभी तो इसमें जान है उसका अर्थ यह है कि अभी तो इसमें ज्ञान है। ज्ञान बिना आत्मा नहीं रहता। तो सोये हुए मनुष्यमें चूँकि सभी लोग कहते हैं कि जान है, उसीका अर्थ है कि ज्ञान है। यहाँ लोग कुछ जीवोंको जानवर कहते हैं। जानवरका अर्थ असली क्या है? ज्ञानवर! जो ज्ञानमें ऊँचा हो, ज्ञानमें श्रेष्ठ हो उसका नाम है ज्ञानवर। और, ज्ञानवरका बिगड़ कर रूप बन गया जानवर। अगर किसीको कहा जाय कि आपकी विद्वत्ताका क्या कहना! आप तो जानवर हैं तो उसका अर्थ हुआ कि ज्ञानमें श्रेष्ठ हैं। लेकिन कोई पुरुष ज्ञानमें तो श्रेष्ठ हो नहीं, मूर्ख हो और उसे कहा जाय ज्ञानवर, तो वह तो गाली मानेगा। तो इसी तरह जानवर शब्द गालीके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। जान कहो ज्ञान कहो एक ही बात है। तो जैसे जागृत दशामें दूसरे पुरुषकी ज्ञान वृत्तिका अंदाज हम श्वास, उष्णता, आकारविशेषसे जाना करते हैं उसी प्रकार सोये हुएका भी ज्ञान जान लिया जाता है।

शङ्काकारद्वारा प्राणद्वैविध्यका प्रस्ताव—अब यहाँ शङ्काकार क्षणिकवादी कहता है कि भाई! प्राण आदिक दो प्रकारके होते हैं—एक तो चेतनाप्रभव प्राण और एक प्राणादिप्रभव प्राण अर्थात् जागृत अवस्थामें जो प्राण है वह तो चैतन्यसे पैदा होता है और सोये हुएमें जो प्राण है वह प्राणोंसे पैदा होता है। शङ्काकार इस तरह दो भेद डाल रहा है। इसमें कुछ अंदाजा उसने यों लगाया कि चूँकि सोये हुए मनुष्यमें ज्ञानकी सावधानी नहीं है तो पहिले तो जागृत अवस्थामें प्राण थे, चैतन्यसे उत्पन्न हुए उन्हीं प्राणोंसे प्राण प्राण होते जा रहे हैं। चैतन्यसे तो प्राण उत्पन्न नहीं हो रहे हैं, ऐसा अंदाज करके शङ्काकार कह रहा है कि जागृत अवस्थामें चैतन्यका अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि वहां जो ये प्राण उत्पन्न होते हैं श्वासोच्छ्वास आदिक उत्पन्न होते हैं ये चेतनसे उत्पन्न होते हैं। वहां प्राणप्रभव प्राण नहीं है। प्राणोंसे प्राण उत्पन्न नहीं हो रहे हैं जगती अवस्थामें। सोई हुई अवस्थामें जो प्राण

हैं वे प्राणोंसे पैदा हुए, चैतन्यसे पैदा नही हुए। शङ्काकार कह रहा है – जैसे एक मायाघट होता है जिसे गोपालघट भी बोलते हैं, जिससे धुवां तो निकलता है पर आग नही रहती। ऐसा जादूगरीका घट, गोपालघट कि जहाँ धुवां निकल रहा है, पर आग नही है, तो उस गोपालघटमें धुवांसे धुवां उत्पन्न होता है और रसोईघरमें जो धुवां होता है वह अग्निसे उत्पन्न होता है। तो जैसे दो तरहके धुवां हुए – धूमसे उत्पन्न हुआ धुवाँ और अग्निसे उत्पन्न हुआ धुवां। अथवा मान लो किसी मटकेमें खूब गहरा धुवाँ भरदें, भरकर उसका मुँह बन्द करदें कि निकल न सके उसे ले जावें कहीं बाहरी जगह। वहां ढक्कन निकालकर देखा तो धुवां निकल रहा है, पर अग्नि नही है। क्योंकि वे धूम धूमप्रभव हैं। तो धूमप्रभव धुवांसे अग्निका अनुमान नही किया जा सकता। हाँ अग्निप्रभव धुवांसे अग्निका अनुमान किया जा सकता है। तो इसी तरह सोई हुई अवस्थामें प्राणादिप्रभव प्राण हैं। प्राणोंसे प्राण होते नजर आ रहे हैं और जागृत अवस्थामें चैतन्यप्रभव प्राण हैं। चैतन्यसे प्राणोंकी उत्पत्ति है, तो जागृत अवस्थामें जो प्राण है उससे तो चैतन्यका अनुमान होता है पर सोई हुई अवस्थाका जो प्राण है उससे चैतन्यका अनुमान नही होता।

समस्त प्राणोंमें चैतन्यप्रभवताकी सिद्धि – शङ्काकार यह बात इस चर्चा पर कह रहे हैं जो यह कहा था कि जैसे श्वासोच्छवास शरीरकी उष्णता, आकार विशेष जागृत अवस्थामें नजर आता है और उस अवस्थासे हम जगते पुरुषमें ज्ञान है, यह अनुमान करते हैं इसी तरह श्वास देखकर शरीरकी गर्मी जानकर उसमें ज्ञान है, यह अनुमान करते हैं इसमें दोष देनेके लिए यह कह रहे हैं कि जगते पुरुषके प्राण और किस्मके हैं सोये हुए पुरुषके प्राण और किस्मके हैं। प्राणोंसे उत्पन्न हुए प्राणोंसे चैतन्यका अनुमान नही होता है। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना तुम्हारा अयुक्त है क्योंकि सुषुप्त पुरुषके और जागृत पुरुषके प्राण आदिकमें अन्तर कुछ नजर नही आता, जैसे सोया हुआ पुरुष श्वास ले रहा है, जी रहा है इसी तरह जगता हुआ पुरुष भी श्वास ले रहा है। यदि दोनोंकी श्वासोंमें फर्क होता तो फिर यह सन्देह किसी किसीमें क्यों होता कि यह सोया हुआ है या जगता हुआ है ? अथवा कोई पुरुष दूसरेको ठगने के लिए जान-बूझकर सोया हुआसा पड़ जाय तो उसके प्रति भी लोग सन्देह करते हैं ना, देखें तो सही, यह बहुत बहाना बनाया करता है, यह सो रहा है कि जग रहा है? यह सन्देह क्यों होता है ? इसी कारण कि जैसे श्वासोच्छवास जगतेमें चलता है ऐसे ही सोयेमें भी चलता है। उन प्राणोंमें कोई अन्तर समझमें नही आता। सोये हुएके भी प्राण चैतन्यसे उत्पन्न होते हैं, प्राणोंसे प्राण उत्पन्न नही होते। चाहे जगता हो या सोता हो, जहाँ श्वासोच्छवास उत्पन्न हो रहा है चेतनके सम्बन्धसे हो रहा है। यदि सोये हुएका वह प्राण चेतनसे उत्पन्न न हो तो दूसरेको ठगनेके अभिप्रायसे जगता हुआ पुरुष सोयेका कपट करे तो उसमें फिर सोये हुए पुरुष जैसी मुद्रामें न नजर आना चाहिए। क्योंकि जैसे अग्निसे जो धुवां उत्पन्न होता है उस प्रकारका धुवां सैंकड़ों

प्रयत्न कोई करले, पर अन्य चीजमें उत्पन्न नही किया जा सकता और उस मायामयी घटसे जैसे धुवां उत्पन्न होता है, उस धुवांसे अग्निसे उत्पन्न होने वाले धुवांका साम्य नही किया जा सकता। बहुत ठंडके दिनोंमें तालाबोंमेंसे बड़ी तेज भाप निकलती है, और दूरसे देखने वाले पुरुष जानते हैं कि यह बड़ा धुवां उठ रहा है। पर उस धूममें और अग्निसे उत्पन्न होने वाली धूममें फिर भी कुछ फर्क नजर आता है या जाड़ेके दिनोंमें खुदके ही मुखसे भाप निकलती है, तो क्या कोई यह सन्देह करने लगेगा कि अरे इसके दिलमें तो आग लग गयी! देखो ना धुवां निकल रहा है। तो वह धूम जो अग्निसे निकलता है ऐसा धूम अन्य बातोंसे सैंकड़ों उपाय करें तो भी निकल नहीं सकता। और यहाँ तो जैसे सोये हुए पुरुषमें प्राण नजर आ रहे वैसे ही जगते हुएमें नजर आ रहे, इस कारण श्वासोच्छ्वासमें यह भेद नहीं डाल सकते कि यह श्वास तो निकली है चैतन्यसे और यह श्वास निकली है प्राणोंसे। समस्त श्वास चेतनके सम्पर्कसे ही निकलती है।

प्राणोंमें और भावोंमें समानता असमानताकी प्रतीतिसिद्धता—शंकाकार जो इन दो प्राणोंमें अन्तर डाल रहा है जगते हुएके प्राणोंको बताता है कि चेतन से उत्पन्न हुआ और सोये हुएके प्राणोंको बताता है कि प्राणोंसे उत्पन्न हुआ, तो जो चेतन और अचेतनसे उत्पन्न हुए प्राणोंका भेदकर रहा है वह सराग चेष्टा और वीतराग चेष्टाका भेद क्यों नहीं मान लेता? फिर यह कहना युक्त नही है कि 'सराग पुरुष भी वीतरागकी तरह अपनी चेष्टा कर सकता है और वीतराग भी सरागवत् चेष्टा कर सकते हैं सो यह निश्चय अशक्य है कि यह सराग है और यह वीतराग है।' जब यह वीतराग है या सराग है यह भेद नहीं किया जा सकता तब इन प्राणोंमें भी भेद न करना चाहिये। भले ही जैसे विहार मुनिजन करते हैं तो विहार अरहंत भगवान भी करते हैं। सकल परमात्मा भी करते हैं। कोई चारणऋद्धिधारी मुनि हो वह भी आकाशमें कदम उठाकर विहार करता है। तो वह मुनि आकाशमें कदम उठाकर विहार भले ही करे फिर भी यह समझमें आता ही है कि यह वीतराग देव हैं और यह अभी मुनि है। उनका निश्चय कैसे नहीं होता? उपदेशकी बात सुनलो। ध्वनि तो सराग मुनिके भी निकलती है और सकल परमात्मा अरहंत देवकी भी निकलती है पर ध्वनि में अन्तर तो नजर आता है। सरागी मुनियोंकी ध्वनि अरहंत प्रभुकी ध्वनिकी तरह नहीं होती है। अरहंत प्रभुकी ध्वनि दिव्यध्वनि है। यहाँ मनुष्य ध्वनि कहते हैं, वहाँ तो भेद भी है, यहाँ प्राणोंमें भेद नही है यह निश्चय करना कि सोये हुएमें सब अवस्थाओंमें आत्मा है तो सदा ज्ञानमय रहता है। यह नही है कि सोये हुएमें आत्मा ज्ञान रहित हो गया और जगते हुएमें आत्मा ज्ञानसहित हो गया। जो ज्ञानी है वह सदा ज्ञानी है। जिस वस्तुमें ज्ञान नहीं है उसमें कभी भी ज्ञान नहीं आ सकता।

जीवके कार्योंकी जीवमें प्रसिद्धि—लोकमें दो प्रकराके पदार्थ हैं—एक जीव,

एक अजीव । अब निर्णय कर लीजिये । सभी लोग जानते हैं–कुत्तेको यदि कोई लाठी मारता हो तो दूसरे लोग उसे डाटते हैं क्यों बेरहम बनता है, पर भींटमें कोई लाठी मार रहा हो तो कोई पुरुष उसे नहीं डाटता कि अरे क्यों भींटको पीट रहा है ? क्यों बेरहम बन रहा है ? सबके ज्ञानमें यह बात है कि भींटके ज्ञान नहीं है और इन कुत्ता बिल्ली आदिकके ज्ञान है । तो दो प्रकारके पदार्थ हैं–जीव और अजीव । जो जीवमें गुण हैं वे कभी अजीवमें नहीं आ सकते, जो अजीवमें गुण हैं वे कभी जीवमें नहीं आ सकते । ये संसारी जीव अनादिकालसे अजीवके साथ ऐसी घनिष्ठतामें जकड़े हुए हैं, बद्ध बने हैं, एक क्षेत्रावगाही हो रहे हैं, देखो ना शरीर चलेगा तो आत्माको चलना पड़ेगा और आत्मा चलेगा तो शरीरको भी चलना पड़ेगा । इन दोनोंका परस्परमें कैसा घनिष्ट सम्बन्ध है । बँधा हुआ है । कर्मोंसे जकड़ा हुआ है, इतना तीव्र जकड़ा हुआ होनेपर भी जीवके गुण कभी अजीवमें नही आ सकते और अजीवके गुण कभी जीवमें नहीं आ सकते । अब जरा दो जीवोंका भी मुकाबला करो । पिता पुत्र हैं, पति पत्नि हैं, बड़े घनिष्ट दो मित्र हैं, भाई–भाई हैं कितना भी प्रेम हो, पर एक जीवके गुण, एक जीवके परिणमन दूसरे जीवमें कभी नहीं पहुंचते । दूसरेके परिणमन किसी अन्य दूसरेमें कभी नहीं पहुंचते । ये संसारके सभी प्राणी अपनी–अपनी कषायोंके अनुसार अपनी–अपनी चेष्टा करते हैं जो चेष्टा अनुकूल लग जाती है तो हम उससे प्रेम करते हैं, यह मेरा बड़ा प्रेमी है, जिसकी चेष्टा प्रतिकूल हो जाती है उससे हम द्वेष करते हैं यह मेरा बड़ा विरोधी है । लेकिन जगतमें अनन्त जीव हैं, सबकी सत्ता न्यारी न्यारी हैं । कोई भी जीव अपने प्रदेशसे बाहर अपनी कुछ भी चेष्टा कर नहीं सकता । फिर किसको हम मित्र कहें, किसको हम विरोधी कहें । अरे कोई मुझसे प्रेम नही करता ।

विकल्पों द्वारा परको आत्मीय बनानेकी अशक्यता –सभी प्राणी अपने अपने विकल्पोंके अनुसार अपने आपकी चेष्टा करते हैं, भाव बनाते हैं । तो एक जीव का गुण, एक जीवका परिणमन दूसरे जीवमें भी नही पहुंचता । प्रत्येक पदार्थ अपने सत्त्वके कारण स्वतंत्र है और देखिये जिस निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धमें यह शीघ्रतासे समझ लिया जाता है कि अग्निने पानीको गरम किया । शरीरने आत्माको चला दिया इस मनुष्यने अमुक कापी किताब बना दिया । वहाँ पर भी कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य मे क्रिया नहीं कर रहा है । एक पदार्थ दूसरे पदार्थमें अपना परिणमन डाल दे यह त्रिकालमें भी नही हो सकता । प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् है और पररूपसे असत् है । वह स्वरूप क्या है ? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । तो जब सब पदार्थ अपने ही गुणों के स्वामी हैं, अपने ही परिणमनके स्वामी हैं तो जरा अपने आपमें भी तो अनुभव करना चाहिये । जगतमें कोई किसीका सहाय नहीं होता । क्या आपके दादा बाबा पिता जो जिनके नही रहे उनके प्यार पर तो कुछ ध्यान दीजिये । कितना आपपर घनिष्ट प्यार था । आपके बाबा आपको गोदमें लिए रहा करते थे । लड़कोंसे भी विशेष प्यार पोतोंसे होता है, और तभी सरकारी भी नियम है कि पिताकी जायदादका अधि-

कारी लड़का तो नहीं है, मगर उस जायदादका अधिकारी पोता है। उसे कानूनन हक है। और पहिले जमानेमें जो बाबाका नाम होता था करीब करीब वही नाम पोतेका रखा जाता था। आप पुराणोंमें पढ़ेंगे तो कुछ जगह ऐसे ही नाम रखे पायेंगे। तो इतना घनिष्ट स्नेह करते हैं तो करें, लेकिन सम्बन्ध रंचमात्र नहीं है। अपने आपके आत्मापर दृष्टि डालें वही एक मात्र सहाय है। तो जिन दादा, बाबा, आदिका मुझपर बड़ा प्यार था वे क्या अपना प्यार निभा सके ? वे अब हैं क्या ? उनसे कुछ मिल जुल रहा है क्या ? उन्होंने भी क्या किया ? अपना बिगाड़ किया। मेरेको लक्ष्यमें लेकर अपना मोह बढ़ाया और जीवन खोया। और मरण करके जिस गतिमें पहुंचे हों वहाँ वे अपने कर्मानुसार दुःख भोग रहे हैं। उन्होंने मेरा क्या किया ? उनको मुझसे क्या लाभ मिला ? उनसे मुझे क्या लाभ मिला ? सभी जीवोंकी चेष्टा अपने-अपने कषाय भावोंसे होती है।

प्रभुके कर्तव्योंके आदरमें ही प्रभुभक्तिकी यथार्थता— हम यहाँ प्रभु पूजा करने आते हैं, दर्शन करने आते हैं, तो दर्शन हम जिनके करते हैं, जिनके आगे शीश झुकाते हैं, नमस्कार करते हैं, आदर देते है, उन्होंने जो काम किया उस काममें भी आपका आदर है कि नहीं ? यदि उनके काममें आदर नहीं है तो आपका यह नमस्कार सब झूठा है, थोथा है। खूब गम्भीरतासे सोचो प्रभुने क्या कार्य किया था ? वस्तु स्वरूपका ज्ञान किया था। भेदविज्ञान किया था। भेद विज्ञान करके पर पदार्थोंसे उपेक्षा करके, मोह तोड़कर निर्मोह अविकार ज्ञानस्वभावमें अपना उपयोग लगाया था और सबसे फिर हटकर इस ही ज्ञानस्वभावमें लीन होकर उन्होंने यह परमपद पाया। उन्होंने जो काम किया उसमें आदर नहीं है तो फिर दर्शन क्या ? चाहे हम वह काम न कर सकें, गृहस्थ हैं। दस जगह चित्त उलझता है। अनेक चिन्ता शल्य रहा करती हैं, हम चाहे उस काममें सफल नहीं हो पायें, लेकिन यदि आदर भी नहीं है जो प्रभुने कार्य किया, जो मोक्ष विधिकी उसमें यदि आदर नहीं है, हम उसे आदेय नहीं मानते। मुझे भी यह काम करना चाहिए, जब मैं कर सकूँगा तभीमें संकटोंसे छुटकारा पाऊँगा यदि ऐसा परिणाम ऐसी श्रद्धा नहीं होती है तो हमने क्या सिर झुकाया ? क्या माना ? तब अपनी जिम्मेदारी अपने आपपर जानकर अपना विचार तो चलना ही जाहिये कि जिससे हमारा ज्ञान विशुद्ध बने और दुर्लभ यह मानव जीवन हमारा सफल हो। देखिये तो सही संसारमें कीड़ा मकोड़ा वृक्ष पौधे और पशु पक्षी ये सारे जानवर कितनी एक तुच्छ गतिमें हैं इनकी दयनीय अवस्था है, उन सबको पार करके हम आप ऐसे मनुष्य हुए हैं जहाँ सत्‌धर्मका समागम मिला है। ऐसे दुर्लभ समागमको पाकर हम यदि अपने जीवनको सफल करने का परिणामन बनायें, धर्मपालन न करें तो जीवन तो गुजर जायगा, समझिये कि अमूल्य अवसरको पाकर हमने यों ही विषयोंमें गवां दिया। इससे जन्म मरणकी परम्परा हमारी लम्बी होती जायगी। अतः चेतें, मोहमें कुछ नहीं रखा है, निर्मोह ज्ञानकी बात सीखें और आत्म धर्ममें रहकर अपने जीवनको सफल बनायें।

प्राणद्वैविध्यकी चर्चाका प्रकरण—यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि सोये हुए पुरुषमें ज्ञान रहता है या नहीं ? शङ्काकारने कहा है कि सोये हुए पुरुषमें ज्ञान नही रहता है। तब उनसे पूछा गया कि ज्ञान नही रहता है तो सोये हुए पुरुष की श्वास निकलना, शरीरकी गर्मी रहना यह किस बलपर है ? ज्ञानरहित होजाना इसका अर्थ है कि ज्ञान नही रहा। जब तक जान है तब तक ज्ञान है। तो जब ज्ञान नही माना सोये हुए आदमीमें तो श्वासोच्छ्वास कैसे निकल रहा है ? इसके उत्तरमें शङ्काकारने यह कहा कि भाई ! प्राण दो तरहके होते हैं—एक तो चैतन्यसे उत्पन्न होने वाले प्राण और एक प्राणोंसे उत्पन्न होने वाले प्राण। तो सोये हुएमें चैतन्य प्रभव प्राण नही है किन्तु प्राणप्रभव प्राण है। इस सम्बन्धमें चर्चा चलनेपर यह सिद्ध हुआ कि सोये हुए पुरुषमें भी चैतन्यप्रभव प्राण है। जैसे प्राण जगते हुए पुरुषके हैं वैसे ही प्राण सोते हुए पुरुषके हैं। उस श्वासोच्छ्वासमें कुछ अन्तर नही आता। इसके विरोधमें शङ्काकारने यह कहा था कि जैसे एक मायाघट होता है, मायामयी घड़ा, जिसे गोपालघट कहते हैं उसमेंसे धुवाँ निकलता दिखाई देता है, पर अग्नि नही होती। तो इसका दृष्टान्त देकर शङ्काकारने यह कहा कि जैसे धुवा अग्निसे भी उत्पन्न होता है और धुवांसे भी उत्पन्न होता है तो ऐसे ही श्वासोच्छ्वास चैतन्यसे भी उत्पन्न होता है और प्राणोंसे भी उत्पन्न होता है। तो इसके निराकरणमें बात कही गई कि जैसा धुवां मायाघटसे होता और जैसा धुवाँ अग्निसे होता, इसमें अन्तर है ? और परख कर ली जाती है कि यह अग्निसे उत्पन्न हुआ है या मायाघटसे। तो जिस तरह यह निर्णय कर लिया जाता है कि यह धुवां आगका है या धुवाँ का है। इस तरहका निर्णय कोई भी पुरुष जगते और सोतेके प्राणमें नही कर सकता। क्योंकि चैतन्य तो किसीको दिखाई नही देता। जगते पुरुषका भी श्वासोच्छ्वास चल रहा है उससे यह अनुमान करते कि इसमें चैतन्य है, ज्ञान है। तो ऐसे ही सोये पुरुषमें जो श्वासोच्छ्वास निकल रहा है उसमें भी अनुमान किया जाना चाहिये कि इसमें चैतन्य है और ज्ञान है।

प्राणोंमें चैतन्यप्रभवता और प्राणप्रभवताके भेदका अनिर्णय—देखिये ! धूममें जब सन्देह हो जाय कि यह धुवां अग्निका है या मायाघटका है तो उसका सदेह आंखोंसे देखकर दूर कर लिया जाता है। मायाघटमें देखा आग थी नहीं सो जाना गया कि यह धुवां आगका नही। या तालाबमें तेज धूमसा निकलता है शीत ऋतुमें, उस समय संदेह हो जाय कि यह जो धुवाँसा निकल रहा है या आगके बिना, तो उस सन्देहको देखकर दूर किया जा सकता है। लेकिन यहाँ यह सन्देह डालना कि जगते पुरुषमें जो श्वास निकल रहा है वह तो चैतन्यसे निकल रहा है और सोते में जो श्वास निकल रहा है वह चैतन्यसे नही किन्तु प्राणसे निकल रहा है। तो उसमें संदेह होना कि चैतन्यसे निकला या प्राणसे, इसको दूर करनेका कोई साधन नहीं। प्राणोंमें यह सदेह कहांसे आप दूर करेंगे कि यह बादके चैतन्यसे उत्पन्न हुआ

प्राण है या पूर्व भवसे आया हुआ प्राण है। जब दूसरा चैतन्य दिखता ही नहीं है तो फिर किसीने शास्त्र ही क्यों बनाया? फिर इन क्षणिकवादियोंने सुप्तमें चैतन्यका ज्ञान अभाव मानने वाले लोगोंने, पर चेतनका जब दर्शन ही नहीं हो सकता, तो फिर शास्त्र क्यों बनाया? किसीको समझानेके लिए उपदेश भी क्यों दिया जाता है? सन्देहसे शास्त्र बनाया तो फिर चार्वाक या नास्तिक लोगोंके मतमें क्या विरोध रहा? इससे यह मानना चाहिये कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है। यह आत्मा जिस भवमें रहता है उस भवमें उस भवके आरम्भसे लेकर मरण काल तक निरन्तर ज्ञान बना रहता है। चाहे वह सो रहा हो, मूर्छित हो, पागल हो, सब स्थितियोंमें आत्मामें ज्ञान रहता है और उस ही भवकी बात क्या, उस भवको छोड़कर अगले भवमें जायगा तो वहाँ पर भी इसमें ज्ञान बना रहेगा। ज्ञानसे शून्य आत्मा कभी भी नहीं होता।

जाग्रत अथवा प्रबुद्ध चैतन्यसे सुप्तप्राणोंकी उत्पत्ति असिद्धि और चैतन्यप्रभवताकी सिद्धि— ये शंकाकार यहाँ यह मान रहे हैं कि सोई हुई हालतमें ज्ञान नहीं है, और जो श्वासोच्छ्वास निकल रहा है वह चैतन्यसे नहीं किन्तु प्राणोंसे निकल रहा है। तो सोये हुए पुरुषके प्रारम्भमें जो पहिले प्राण उत्पन्न हुआ है बता सकते हो कि यह किससे उत्पन्न हुआ है। क्या पहिले जो जग रहा था उस समय जो जो ज्ञान हो रहा था उस प्राणसे यह सोये हुएका प्राण उत्पन्न हुआ है? यह बात तो गलत है क्योंकि एक विज्ञानसे अनन्तरका प्राण आदिक उत्पन्न हो जाय या जब सोकर जग गया उस जगे हुयेके ज्ञानका कारण बन जाय सो असम्भव बात है। शंकाकार यहाँ मानता है कि जब यह जीव जग रहा था तब तो इसमें ज्ञान था और अब जो सो गया है तो इसके ज्ञान नहीं रहा। अब सोकरके जो जगेगा तो वहाँ ज्ञान पैदा हो जायगा। तो सो करके जगे, वहां जो ज्ञान पैदा हुआ है वह पहिले जग रहा था तबके ज्ञानसे पैदा हुआ था, तो यह बात कैसे मानी जा सकती है? एक सामग्रीसे क्रमसे होने वाले दो कार्य उत्पन्न नही हो सकते। अगर एक पदार्थसे दो कार्य उत्पन्न होने लगे तो फिर ये क्षणिकवादी लोग क्यों नित्य सिद्धान्तका विरोध करते? नित्य पदार्थ जो एकरूप हैं उनसे यह मानना चाहिए कि सोये हुएमें जो प्राण उत्पन्न हो रहे हैं तो सोये हुए समयमें भी ज्ञान बराबर है और उस ज्ञानके कारण ये प्राण प्रकट हो रहे हैं, श्वासोच्छ्वास प्रकट होरहा है। सोये हुएमें ज्ञानके अभावकी सिद्धि नही करते।

स्वापसुखसंवेदन होनेसे सुप्त प्राणोंके चैतन्यप्रभवत्वकी सिद्धि— और भी देखो! सोये हुएके समयमें जो सुख होता है उसका सम्वेदन उस सोये हुए का बना होता है। कदाचित् कोई स्वप्न दुःखभरा आ जाय सोये हुए मनुष्यको, कहीं जङ्गलमें फँस गए, किसी सिंहने आक्रमण कर दिया, या सांप निकल आया, कुछ ऐसी आपत्तिकी बात दीखनेमें आ जाय तो वह घबराकर जग जाता है ना? तो उसे सोये हुएकी स्थितिमें दुःख हुआ है ना? उस दुःखके कारण ही तो घबड़ाया है। तो

दु:ख वहां होता है जहाँ ज्ञान है। सो करके कोई मनुष्य उठे तो उठनेके बाद वह यह स्मरण करता है ना कि मैं आज बड़े सुखसे सोया! सभी लोगोंकी बात है। तो सोयेमें सुखका अनुभव हुआ था तभी तो जगनेपर ख्याल कर रहा है। जिस चीजका अनुभव नही हुआ उस चीजका स्मरण तो हुआ ही नही करता। यह भी बात नहीं कह सकते कि सोये हुएमें अगर सुखका अनुभव कर रहा है तो वह सोया हुआ मनुष्य उस सुखका निरूपण क्यों नहीं करता ? सोये हुएसे कोई पूछे कि तुम कैसे सो रहे हो ? तुम्हें सुख है ना ? अच्छी तरह सो रहे ना ? तो वह कोई जवाब नहीं देता। तो सोया हुआ मनुष्य अपने सुखका निरूपण नहीं कर सकता। इसलिए कहना कि इसमें ज्ञान नही है, यह बात गलत है। किसी दो एक दिनका पैदा हुए बच्चा मांके स्तनमें लगकर तो वह दूध पीता है ना ?....हां पीता है।....अच्छा, वह बच्चा दूध पीता है तो उसे उस दूध पीनेसे सुख होता है कि नही ?....सभी लोग इस बातको मानते हैं कि उस बच्चेको दूध पीते हुएमें सुख होता है। उस दो एक दिनके बच्चेसे यदि कोई पूछे कि बतावो तुम्हें कैसा सुख हुआ है ? तो क्या वह बच्चा कुछ बता सकेगा ? अरे वह तो बोलता ही नहीं है। तो जो सुखको न बता सके उसमें तुम कहते कि सुख होता ही नहीं, तो तुम्हारी यह बात युक्ति संगत तो नही है। सोया हुआ मनुष्य यदि सुखकी बात न बता सके तो इसका अर्थ यह न होगा कि उसको सुखका सम्वेदन ही नहीं है।

दु:खाभावकी सुखभावरूपता – यह भी नही कह सकते कि सोये हुएमें सुख नही हैं, किन्तु दु:खका अभाव है। सो गया, दु:ख न रहा, सुख वहां कुछ है नहीं, तो कोई अभाव तुच्छ नही होता है। अभाव किसीके सद्भावरूप होता है। आकुलता न रही, वहां परम आह्लाद है उसका नाम आनन्द है। कोई कहे कि भगवानमें आनन्द है ही नही, न अरहंतमें, न सिद्धमें, न बड़े योगीश्वरोंमें। उनमें आनन्द होता ही नही, केवल दु:खका अभाव है। दु:ख नही है. आकुलता नही है। अरे तो कोई तुच्छाभाव तो नही है। दु:ख तो इन खम्भोंमें भी नही है। इनको कितना ही पीटो तो दु:ख नही होता। तो क्या इन्हें सुखी कह दोगे ? नही इनमें न चेतना है न दुख सुख है। दु:ख न होनेका अर्थ है सुख, आनन्द। तो उस सोई हुई अवस्थामें दु:ख नही है इसका अर्थ है सुख है। तो जो सुख, दु:खका सम्वेदन करता है ऐसा सोया हुआ भी प्राणी ज्ञान वाला है, ज्ञानरहित नही है।

आत्माकी सर्वत्र ज्ञानरूपता - आत्मा ज्ञानस्वरूप है, सदा ज्ञानमय है। यह जीव मिथ्याभावमें आया है। मोहबुद्धिमें आया तब इसका भवितव्य खोटा है। इसे बाह्य पदार्थ ही रुच रहे हैं। उन बाह्य पदार्थोंके सम्पर्कमें ही यह राजी हो रहा है। उस समय इसका ज्ञान दूषित है, मिथ्या हो रहा है। जब इस आत्मामें सद्बुद्धि जगती है अपने आपके स्वरूपकी पहिचान होती है—अरे यह मैं आत्मा तो सबसे

निराला केवल ज्ञानानन्दमात्र अमूर्त, रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिकसे रहित हूँ। जब अपने स्वरूपकी सुध होती है तब इसमें बल प्रकट होता है कि क्यों किसी परमें आकर्षित होना, क्यों किसी परके विकल्पोंमें उलझना, क्यों अपनी यह दुर्लभ जिन्दगी यों ही विषयोंमें खोना। जब वह परसे उपेक्षा करता है, अपने स्वरूपमें प्रवेश करता है तब उसके ये पाप दूर होते हैं। जब विषय कषायोंके पाप दूर हुए और अन्तःशुद्धि बढ़ी कि शुद्ध ज्ञान उत्पन्न हो गया। बस अब ऐसा विशुद्ध ज्ञान निरन्तर बना रहे इस हीका नाम मोक्ष है।

भेदभाव और क्षणक्षयवादमें मुक्तिस्वरूपकी प्रकल्पना—इस प्रकरणमें मूल बात तो मोक्षकी चल रही है। मोक्षका स्वरूप क्या है इस पर चर्चायें चल रही हैं। जैन लोग तो मानते हैं कि अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त शक्ति अनन्त आनन्द के प्रकट होनेका नाम मोक्ष है। इसके विरोधमें अभी तक दो मंतव्य आये—एक तो वैशेषिकका जिनका यह कथन है कि ज्ञानके विकासका नाम मोक्ष है। जब तक आत्मा में ज्ञान रहता है तब तक यह संसारमें घूमता है। जब इसके ज्ञान सुख दुःख आदिक गुण अवगुण सब खतम हो जायें, केवल एक चित्स्वरूपमात्र रह जाय उसका नाम मोक्ष है। ये मोक्षमें ज्ञानको भी नहीं मानते। दूसरा मंतव्य आया था क्षणिकवादियों का। उनका कथन है कि विशुद्ध ज्ञानके उत्पन्न होनेका नाम मोक्ष है। बात तो यद्यपि सही है लेकिन इस कथित विशुद्ध ज्ञानकी परिभाषा क्या है, जब यह जानते हैं तब विदित होता है कि यह भी तो मोक्षका स्वरूप नहीं बन सकता। क्षणिकवादियोंका विशुद्ध ज्ञान यह है कि एक समयमें एक ज्ञान पदार्थ रहता है, उसका आधारभूत कोई आत्मा नहीं है। जो एक समयमें ज्ञान हो उस हीका नाम आत्मा कह लो, उस हीका नाम ज्ञान कह लो। दूसरे समयमें वह ज्ञान नहीं रहा। प्रत्येक समयमें नये-नये ज्ञान पदार्थ प्रकट होते रहनेके सिलसिलेमें यह जो भ्रम बन गया है कि मैं वह हूँ जो पहिले न था बस इस भ्रमसे संसारमें भ्रमण करना पड़ता है। जब यह ज्ञान हो जायगा कि मैं तो क्षणिक हूं, एक समयसे हूँ और मिट गया, आगे पीछे रहता ही नहीं हूँ तो ऐसा जब एक क्षणिक आत्माका बोध होता है, तो इस अभ्याससे एक ज्ञान ऐसा नया आयगा कि जिसके बाद फिर और ज्ञान पैदा न होगा, इस हीका नाम मोक्ष है। इन मन्तव्योंके सम्बन्धमें अब तक ये चर्चायें चलीं और यह सिद्ध हुआ कि आत्माके ज्ञान और आनन्दके विशुद्ध अनन्त विकास होनेका नाम मोक्ष है।

विशेषवादीका अनेकान्त और मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें कथन—अब इस प्रसङ्गमें विशेषवादी अनेकान्तके खिलाफ अपना मंतव्य रख रहे हैं और यह सिद्ध करना चाहते हैं कि स्याद्वादमें जो मोक्षका स्वरूप बताया है और मोक्षमें जो उपाय बताया है वह सही नहीं बैठता। विशेषवादी यहाँ कह रहे हैं कि ये स्याद्वादी लोग अनेकान्तकी भावनासे मोक्षशिलाके ऊपर अक्षय शरीर आदिके लाभ होनेका नाम

मोक्ष मानते हैं। देखिये ! इनकी शब्दयोजना तो यह है लेकिन अनेकान्तका अर्थ क्या करेंगे और अक्षयशरीरका अर्थ क्या करेंगे सो यही खुद बतावेंगे। शङ्काकार कह रहा है कि अनेकान्त भावनासे मोक्षशिलाके ऊपर अक्षय शरीर स्वरूप देहकी प्राप्ति होनेका नाम, ज्ञानकी प्राप्ति होनेका नाम मोक्ष है, ऐसा स्याद्वादी मानते हैं और इस माननेमें यह दलील देते हैं स्याद्वादी कि अगर हम पदार्थोंको नित्य मान लेंगे तो उस पदार्थमें हमारा स्नेह जगने लगेगा और अनित्य मान लेंगे तो उस पदार्थमें हमें घृणा जगने लगेगी। इससे रागद्वेष न जगें इसके अर्थ अनेकान्तकी भावना की जाती है कि पदार्थ नित्य भी है अनित्य भी है ताकि रागद्वेष न रहे और इस अनेकान्तकी भावनासे मोक्ष का लाभ हो जाय ऐसा स्याद्वादी मानते हैं। यह कथन बिना परीक्षा किए हुए है। इसके निराकरणमें वैशेषिक कह रहे हैं कि मिथ्याज्ञान कहीं मोक्षका कारण होता है, किसी पदार्थको कह दिया कि यह नित्य भी है अनित्य भी है तो यह तो मिथ्या ज्ञान है। वैशेषिक कह रहे हैं जैनोंके प्रति कि यह तो झूठा ज्ञान है। अभी कह दिया नित्य फिर कह दिया अनित्य। अरे ! जो विरुद्ध दो चीजें हैं, नित्यका स्वरूप न्यारा है, अनित्यका स्वरूप न्यारा है, तो वे न्यारे-न्यारे स्वरूप वाले पदार्थ एक पदार्थमें ठहर कैसे सकते हैं ? कोई एक पदार्थ ठंडा भी रहे और गरम भी रहे ऐसा हो सकता है क्या ? अगर ठंडा है तो गरम नही है, गरम है तो ठंडा नही है। इसी तरह जीव यदि नित्य है तो अनित्य नही है और यदि अनित्य है तो नित्य नही है। उसे नित्य भी माने अनित्य भी माने यह एक पदार्थमें कैसे सम्भव है ? पदार्थ या तो नित्य ही मानो या अनित्य ही मानो। यह ढुलमुल नीति क्यों ? यह सन्देह क्यों ? नित्य भी है और अनित्य भी है ?

वस्तुमें स्वरूपसत्त्व और पररूपासत्त्वकी इतरेतराभाव द्वारा सिद्धि करनेका विशेषवादीका प्रस्ताव —यदि यह कहो कि अनेकान्त तो पदार्थमें है ही क्योंकि पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है यह बात तो माननी ही पड़ेगी, यह चौकी अपने स्वरूपसे है, खम्भा आदिक परके स्वरूपसे नही है, यह बात क्या गलत है ? वैशेषिक उत्तरमें कहते हैं कि यह बात अनेकांतके कारण नही है किन्तु, इतरेतराभावके कारण है। इतरेतराभावका क्या अर्थ है ? एक पदार्थमें दूसरे पदार्थ का अभाव रहना ! तो एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका अभाव है इस कारण यह व्यवस्था बनी हुई है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है। विषय बहुत कामका है, जो मुक्तिके उपायोंमें भी काम देगा। यहां सिद्धान्तका निराकरण कर रहे हैं वैशेषिक। जैसे स्याद्वादी मानते हैं कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है यह है स्याद्वाद, यह है अनेकान्त। देखो ना ! इस पदार्थमें दो पदार्थ एक साथ रह गए—अस्तित्व भी और नास्तित्व भी, तो इसके विरुद्ध धर्म एक पदार्थ में रहा, इसमें विरोध कहाँसे आया ? उसके उत्तरमें कह रहे हैं वैशेषिक कि यह बात तो इतरेतराभावके कारण है, न कि अनेकान्तके कारण।

विशेषवादके इतरेतराभावका विवरण—वैशेषिक अभावनामक पदार्थ स्वतन्त्र मानते हैं। जैसे जीव है ना कुछ ? समझमें तो आता ही है। है अच्छा और पुद्गल है ना कुछ ? है। तो इस तरह वे कहते हैं कि गुण भी है ना कुछ ? समझमें आता ना ? है। तो गुण भी पदार्थ है और पर्याय भी है ना कुछ ? इसकी तो बहुत ज्यादह जरूरत पड़ रही है। हम आप जिनसे व्यवहार करते हैं, जितना बोलचाल करते हैं वह सब पर्याय ही तो है ? है। और इसी तरह सामान्य विशेष समवाय भी है। और, एक अभाव नामक भी अलग पदार्थ है। जैसे पुद्गलके बारेमें तुम कहते हो यह है पदार्थ, इसी तरह अभाव नामका भी एक पदार्थ हुआ करता है। नहीं है, यह भी पदार्थ है। तो उस अभावके चार भेद किए गए—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव। प्रागभावका अर्थ है कि कार्यसे पहिले कार्यका अभाव होना। जैसे मिट्टीके लौंधेसे घड़ा बनाया जाता है तो जिस समय मिट्टीका लौंधा है उस समय घड़ेका प्रागभाव है उस समय घड़ा तो नहीं है। जब लौंधा है तो लौंधेके समयमें घड़ेका प्रागभाव है। और जब उस लौंधेसे घड़ा बन गया तो घड़ा बननेके समयमें उस मिट्टीके लौंधेका प्रध्वंसाभाव है और घड़ेमें कपड़ा नहीं है कपड़ेमें घड़ा नहीं है. कपड़ा अपने स्वरूपसे है, घड़ा अपने स्वरूपसे है, इसका नाम है इतरेतराभाव इतर मायने दूसरा दूसरेमें दूसरेका अभाव होना। घड़ेमें कपड़ा नहीं पाया जाता, कपड़ेमें घड़ा नहीं पाया जाता। यह बात इतरेतराभावसे बन रही है न कि अनेकांत से ! इसी तरह अत्यन्ताभाव भी एक अभाव है। जो तीन कालमें भी कभी एक दूसरे रूप न बन सके उसे अत्यन्ताभाव कहते हैं। तो यह भी पदार्थमें पाया जाता है। अनेकान्तके कारण पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है यह बात ठीक नहीं बैठती। ऐसा ये वैशेषिक सिद्धान्त वाले स्याद्वादका और स्याद्वाद सम्मत मोक्षके बारे में कह रहे हैं कि यह अनेकान्त मिथ्या ज्ञान है।

स्वकार्यकर्तृत्व परकार्याकर्तृत्वको वस्तुस्वभाव माननेकी अनावश्यकताका विशेषवादीका प्रस्ताव यदि कहो कि अनेकांतसे तो यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक पदार्थ अपने कार्यका तो कर्ता है और दूसरेके कार्यका कर्ता नहीं है यह बात भी तो अनेकान्तसे सिद्ध होती है। जीव अजीवकी पर्यायको न करेगा तो यह बात अनेकांतसे ही तो बनेगी। वैशेषिक निराकरण करते हैं कि इसमें भी अनेकान्त की कोई जरूरत नहीं है। पदार्थ अपने कार्योंका करने वाला होता है अन्य कार्योंके करने वाला नहीं होता है, यह तो अन्वयव्यतिरेकसे सिद्ध है। इसमें अनेकान्तकी क्या आवश्यकता है ? अर्थात् जो पदार्थ जिसके अन्वयव्यतिरेकसे उत्पन्न करनेमें व्यापार किया करता है वह उसका कारण है। जैसे घड़ेसे मिट्टी वाला ही कार्य उत्पन्न होगा, जलसे जल वाला ही कार्य उत्पन्न होगा। तो इसमें अन्वयव्यतिरेक का प्रभाव है। मिट्टीमें अन्वयरूपसे रहकर, तन्मयरूपसे रहकर जो उत्पन्न हो वह उसका कार्य है अथवा एकका दूसरे पदार्थमें निमित्तनैमित्तिक भावमें भी यह लगा

सकते कि जो जिसके होनेपर हो, वह उसका कार्य है। जो जिसके न होनेपर न हो वह उसका कार्य है। तो कोई पदार्थ अपने कार्यको ही करता है परके कार्यको नही करता है यह बात अन्वयव्यतिरेकसे सिद्ध होती है अनेकांतसे नही। इसलिये अनेकांत की भावना करना और उससे मोक्षकी आशा रखना यह असङ्गत बात है। अनेकान्त का ज्ञान ही झूठा ज्ञान है।

मुक्त जीवमें मुक्त और संसारीपनेका अनेकान्त लगानेका विशेषवादी का उपालम्भ—अच्छा, फिर और भी बताओ कि जब अनेकांत ही अनेकांत लगाया जायेगा तब फिर मुक्त होनेपर भी अनेकांत लगाना पड़ेगा कि यह मुक्त होनेपर मुक्त भी है और संसारी भी। क्योंकि तुम्हें तो कई बातें कहनेकी आदत पड़ गयी है। वैशेषिक स्याद्वादीसे कह रहे हैं। ये पदार्थ नित्य भी है, अनित्य भी है हर जगह दो बातें लगाते हो। यदि दो जगह लगावोगे तो गड़बड़ हो जायगा। इससे मानना चाहिए कि अनेकांत ज्ञान झूठा है। उससे मुक्ति नही होती। और फिर अनेकांतमें भी अनेकांत लगाना चाहिए ना, अनेकांत भी अनेकांतरूप है। एक सत्वधर्म है, उसमें सत्व भी है और असत्व भी है। इस तरह किसी भी तरह किसी धर्मकी सिद्धि नही कर सकते। नित्य सिद्ध कर रह रहे हों तो वहां भी यह लगा बैठें कि नित्यत्वमें नित्य भी है अनित्य भी है। इस तरह तो किसी भी बातकी सिद्धि नही हो सकती। जो भी बात कहोगे उसीमें ही उसके विरुद्धकी बात लगा दी जायगी तब फिर अनेकांत का कोई तरीका सच्चा नहीं है। यह तो सन्देहमें डालने वाली बात है इससे कोई तुम्हारा ठीक निर्णय नहीं हो पा रहा कि जीव नित्य है कि अनित्य। जब जो समझ में आता उसे कह रहे हो। फिर ये मनुष्य किस ज्ञानका सहारा लें जिससे ये निःसंदेह रहें और अपने मोक्षमें चल सकें। तुम्हारे अनेकांतकी भावनासे मोक्षका लाभ लेना सही नही है ऐसा वैशेषिकवादियोंने कहा। अब इसका निराकरण किया जायगा।

विशेषवादी द्वारा स्याद्वादके प्रतिपक्षमें अनेकांत और मोक्षस्वरूपका असंत प्रतिपादन—मोक्षके स्वरूपके वर्णनमें वैशेषिकोंने यह कहा था कि जैन लोग मोक्षका स्वरूप मानते हैं कि अनेकांतकी भावनासे मोक्ष शिलाके ऊपर अक्षय शरीरका लाभ होना सो मोक्ष है। प्रथम तो वे मोक्षके स्वरूपको ही ठीक नही बता सके हैं। मोक्ष नाम मोक्षके शिलाके ऊपर बैठ जानेका नाम नही है। जहाँ सिद्ध भगवान विराज रहे हैं वहाँ संसारी जीव भी मौजूद हैं वे ज्योंके त्यों दुःखी हैं और वहां सिद्ध प्रभु अनन्त आनन्दमें लीन हैं तो कही लोकके अन्तपर पहुंच जानेसे भगवान नही बन जाते हैं। दूसरे उनका अक्षय शरीर क्या है? शरीरका तो अभाव ही हो गया है अब तो आत्माका शुद्ध विकास है। सो यह शुद्ध विकास अनेकांतकी भावनासे ही सीधा प्रकट होनेकी बात नही है। अनेकांतसे तो पदार्थका निर्णय होता है। जीव नित्य है अथवा अनित्य है आदिक जो विचार हैं उनका निर्णय स्याद्वादसे होता है।

अब निर्णय करनेके बाद उनमेंसे हमें कौनसा तत्व ग्रहण करना चाहिए और कौनसे तत्वकी उपेक्षा करना चाहिए ? जैसे कोई कहे कि पुण्य भला है और पाप बुरा है। तो व्याख्यान देनेका यह अर्थ तो नही है कि पुण्यको भी लो और पापको भी लो। केवल निर्णय बताया है। अब उसमेंसे क्या लेना है और क्या छोड़ना है यह तो स्वयं समझ जायगा। तो अनेकांतसे होता है पदार्थका निर्णय और निर्णय होनेपर फिर जो आत्माका सहज स्वरूप है शाश्वत, उसका ग्रहण होता है और पररूपोंका अनित्यरूपों का त्याग होता है; यही है अन्तः साधना।

मोक्षप्रकरणमें निकटतम कारण और अनेकांत दर्शनका सहयोग— निर्विकल्प समाधिसे मोक्ष होता है। स्याद्वादसे तो पदार्थके स्वरूपका निर्णय होता है निर्णय करनेके बाद जो निर्विकल्प समाधि बनती है, जहां किसी प्रकारका विकल्प न जगे, केवल ज्ञाता मात्र रहे, ऐसे समतापरिणामकी अनुभूतिसे मुक्ति होती है। फिर यह कहना कि पदार्थको नित्य माना जायगा तो उसमें स्नेह जगेगा, अनित्य माना जायगा तो उसमें द्वेष जगेगा इसलिए नित्यानित्यात्मक मानते हैं स्याद्वादी तो इस प्रयोजनके लिए नित्यानित्यात्मक नहीं माना जाता। पदार्थकी जानकारीकी जाती है। जीवको नित्यानित्यात्मक जाननेसे कि यह जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य है पर्यायदृष्टिसे अनित्य है तो नित्यका आश्रय करेगा जिसे अनित्य जाना है। जैसे कि उसकी पर्याय अनित्य है, कोई विषय इच्छा आदिक होते हैं, विनाशीक हैं तो स्वतः ही उनका आदर न करेगा यह जीव। जब ये नष्ट हो जाने वाले हैं और उनका शाश्वत स्वरूप नहीं है तो फिर उनमें न फंसेगा। और नित्य जाननेपर कि यह ज्ञानस्वभाव सहज शाश्वत है और यही मैं हूं ऐसा समझनेपर इसपर दृष्टि देगा तो यह तो भला है ज्ञानका कहीं इस भावसे नहीं किया गया कि अनित्य को जाननेसे द्वेष उत्पन्न होता है इसलिए अनित्य मत मानो और नित्यको जाननेसे स्नेह जगता है इसलिए नित्य न मानो। यह प्रयोजन नहीं है। अनेकांत ज्ञानमें कोई बाधा नहीं है, वह मिथ्याज्ञान नही है, अनेकांत ज्ञानसे तो होता है वस्तुके स्वरूपका ज्ञान और उससे होता है सहजस्वरूपका परिचय, फिर बनती है निर्विकल्प समाधि, और समाधिके बलसे होता है मोक्ष।

वस्तुस्वरूपके निर्णयकी पद्धति— अब निर्णयकी बात सुनिये ! अनेकांतसे जो निर्णय किया जाता है वह सही निर्णय होता है। एक दृष्टांत लो—जैसे चार अंधे पुरुष हाथीके स्वरूपको जानने चले तो एक अंधेके हाथमें आया हाथीका पैर तो वह तो इस बातपर अड़ गया कि हाथी तो खम्भेकी तरहका होता है। एकके हाथमें लगा पेट, तो वह कहता है कि हाथी ढोलकी तरह है। एकके हाथमें लगी सूंड तो वह कहता है कि हाथी तो मूसलकी तरहका होता है। एकके हाथमें लगे कान तो वह कहता है कि हाथी सूपकी तरहका होता है। चारों परस्परमें झगड़ने लगे, तो कोई एक सूझता पुरुष आया। उनके झगड़नेका कारण मालूम किया और उन्हें समझाया

कि भाई ! तुम चारोंकी बात सही है । पैरोंकी दृष्टिसे हाथी खम्भे जैसा होता है, पेटकी दृष्टिसे हाथी ढोल जैसा होता है, सूंडकी दृष्टिसे हाथी मूसल जैसा होता है और कानोंकी दृष्टिसे हाथी सूप जैसा है । तो अब निर्णय तो सभी दृष्टियोंसे सब बातोंके जाननेसे हुआ करता है । तो अनेकान्त तो वस्तुस्वरूपका निर्णय देता और निर्णय पाने के बाद हमें क्या करना चाहिए ? किस मार्गसे शांति लाभ हो, यह फिर अपनी बात है । जो हेय चीज हो उससे उपेक्षा करें और जो स्वयं स्वरूप है उसमें रुचि बढ़ायें । वस्तु तो नित्यानित्यात्मक है । कोई भी पदार्थ हो, वह कूटस्थ अपरिणामी नहीं है । उसमें कुछ अवस्था ही न हो, फेरफार ही न हो वह वस्तु नहीं होती और कोई वस्तु क्षण-क्षणमें अपनी सत्ता खोये ऐसा भी नहीं है ।

दृष्टिविशेषसे विरुद्धाविरुद्ध धर्मोंके एकधर्मी रहनेका निःसंदेह निर्णय यह उपालम्भ देना ठीक नहीं कि कोई वस्तु नित्य है तो अनित्य कैसे होगी ? अनित्य है तो नित्य कैसे होगी ? अरे, ये दोनों बातें वस्तुमें प्रतीत हो रही हैं । फिर विरोधकी क्या बात ? जिस दृष्टिमें नित्यपन बताया जाय उस ही दृष्टिमें अनित्यपना कहा जाय तो विरोध आयगा । जैसे एक युवककी कहें कि यह पिता भी है, पुत्र भी है तो जिसका पिता बताते हैं उसीका ही पुत्र बतावें, तब तो विरोध है । अब अमुकका तो पिता है और अन्य अमुकका पुत्र है तो इसमें विरोधकी क्या बात आयी ? इसी तरह जीवको द्रव्यदृष्टिसे ही अनित्य है ऐसा कहा जाय तो विरोध है । जैसे इस चौकी की लम्बाई चार फिट और चौड़ाई सवा फिट है । और कोई कहे कि लम्बाईकी अपेक्षा भी ४ फिट है और लम्बाईकी ही अपेक्षा सवा फिट है तो इसका विरोध है । जब दृष्टियां अलग अलग हैं और उन दृष्टियोंसे अलग अलग बात है तो उनका विरोध नहीं है । नित्य तो उसे कहते हैं जो निरन्तर रहे -प्रत्येक पर्यायोंमें रहे और अनित्य उसे कहते कि जो था वह अब नहीं रहा; ऐसा जहाँ व्यतिरेक हो, व्यावृत्ति हो उसे अनित्य कहते हैं । जैसे अंगुली सीधी है फिर टेढ़ी है और फिर गोल की । तो इन सब अवस्थाओंमें अंगुली तो वही है ना ! तो जब अंगुली मात्रकी दृष्टिसे देखते तो कहेंगे कि अंगुली सदा रहती है और जब अवस्थाओंकी दृष्टिसे देखते हैं जब सीधी है तब टेढ़ी नहीं, जब टेढ़ी है तब सीधी नहीं । तो यह अनित्य बन गया । तो दृष्टि न्यारी न्यारी है उससे न्यारे धर्म एक पदार्थमें कहे गए हैं । एक ही दृष्टिसे विरुद्ध धर्म नहीं बताये जाते हैं । भिन्न-भिन्न धर्मोंका भिन्न अथवा अभिन्न धर्मोंके निमित्तोंके विधि-निषेधोंका एक पदार्थमें निषेध नहीं किया जाता है अन्यथा तो कुछ भी नहीं बोल सकते । मैं अमुक को करता हूँ तो इसका अर्थ है कि और कुछ नहीं कर रहा हूँ, जो लोग मानते हैं कि ईश्वर कर्ता है तो और प्राणी, संसारके और जीव ? ये कर्ता नहीं हैं तो बतावो दो धर्म तुम्हारे भी सिद्धान्तमें आये कि नहीं ?

निर्णय और व्यवहारमें स्याद्वादका स्थान—स्याद्वाद बिना तो कोई जिह्वा

भी नहीं हिला सकता। स्याद्वादके बिना तो व्यवहार भी नही चल सकता। द्रव्य-दृष्टिसे देखा तो पदार्थ नित्य है, पर्याय दृष्टिसे देखा तो अनित्य मिला। देखिये यह तत्वज्ञानकी बात जैन शासनकी मूल बात है। जो इस बातको नही जान सकता वह तो मोक्ष मार्गमें रंच भी कदम नही रख सकता। लोग कहते हैं ना—राजा, राणा, क्षत्रपति, हाथिनके असवार, इन सबको मरना है, ये विनाशीक हैं। तो विनाशिक तो हैं लेकिन इनका क्या समूल नाश हो जायगा ? अरे जो जीव आज राजाकी पर्यायमें है उस जीवकी राजाकी पर्याय नष्ट होगी, जीव नष्ट न होगा। कोई पदार्थ मूलमे नष्ट नही होता। हमें जानना होगा उसका विरोधी धर्म भी। मैं हूं तो मैं मैं हूं मैं और कुछ नही हूँ। यह बात तो उसके पेटेमें पड़ी है ना। कुछ भी बात आप बोलेंगे वह स्याद्वादको लिए हुए बात होगी। देखो एक मनुष्य ५० वर्ष तक जीवित रहता है तो वह पहिले बालक था, फिर जवान हुआ अन्तमें थोड़ा बूढ़ा भी हुआ। तो उसमें जो ये तीन अवस्थायें एक दूसरेसे विरुद्ध हैं ना। बचपनमें जवानी कहाँ, जवानीमें बचपन कहां ? तो इन अवस्थाओंका तो विरोध है पर एक मनुष्यमें ये अवस्थायें रहा करती हैं। क्या विरोध है ? मनुष्य वह है जो इन सब अवस्थाओंमें वहीका वही रहे। तो जो पूर्वकालमें रहने वाली पर्याय और आगे होने वाली पर्यायमें अनुवृत्तरूपसे रहे ऐसा हमें सब कुछ नजर आ रहा है और पर्याय भी दृष्टिमें आ रही हैं और उनमें रहने रहने वाला एक पदार्थ है यह भी समझमें आ रहा। तो जो बात प्रतीतिसिद्ध है उस का अपलाप करना व्यर्थ है। स्याद्वादसे ही तत्त्वनिर्णय होता है और यही सम्यग्ज्ञान को उत्पन्न कर सकता है। तो यह कहना कि अनेकांतका ज्ञान मिथ्या है इसलिए उसकी भावनासे मोक्ष नहीं हो सकता, यह गलत है।

वास्तवमें ज्ञानका प्रयोजन अज्ञाननिवृत्ति - विशेषवादीका यह भी कहना गलत ही है कि "अनित्य मानोगे तो द्वेष हो जायगा और नित्य मानोगे तो स्नेह जम जायगा, इस कारणसे नित्यानित्यात्मक मान लो !" पदार्थ ही नित्यानित्यात्मक है। जो जैसा है उसको उस रूप मानना ही चाहिये। आप देख लीजिये ! समस्त पदार्थ बनते हैं बिगड़ते हैं फिर भी बने रहते हैं। ये तीन बातें हर एक पदार्थमें हैं कि नही? जैसे दूध, दही, घी। जिस पदार्थका दूध होता है दही होता है उसका नाम गोरस मान लीजिए ! तो गोरसकी दृष्टिमें वह वे तीनों अवस्थायें रही और अवस्थाओंकी दृष्टिसे वे अलग-अलग रहे। किसी पुरुषने यदि गोरसका त्याग कर दिया है तो वह वे तीन चीजें नही खा सकता। और किसीने दूधका ही त्याग किया है वह तो दही ले सके, घी ले सके। तो यद्यपि दही, घी भी गोरस है, पर उसने उसकी एक पर्यायका त्याग किया। तो एक ही चीज है उसमें पर्यायें होती रहती हैं बनती हैं बिगड़ती हैं फिर भी बनी रहती हैं। यह बात प्रत्येक जीवमें है और ऐसा माने बिना व्यवहार भी नही चल सकता। कोई पुरुष यह सोचकर कि मेरी दुकानमें यह सोनेकी कलसिया बहुत दिनोंसे पड़ी है और इसे कोई खरीद ही नही रहा है तो इसका मुकुट बनवालें,

आजकल पर्वके दिन हैं, लोग खरीद लेंगे। तो उस कलसियाको तोड़ करके मुकुट बनाया जा रहा था इतनेमें वहां तीन प्रकारके मनुष्य आये। एकको तो चाहिये थी अभिषेक करनेके लिए कलसिया, एकको चाहिए था मुकुट और एकको चाहिए था सोना। जब वे तीनों दुकानपर आए तो जो कलस चाहता था उसको तो खेद हुआ, मैं आध घंटा पहिले आता तो बना बनाया कलस मिलता और कुछ सस्ता भी मिलता। और, जो मुकुट लेने वाला था उसको हर्ष हुआ, वाह कैसा बना बनाया मुकुट जल्दी ही मिल जायगा, अधिक समय तक मुकुट ढूंढना न पड़ेगा। और, जिसे सोना चाहिए था उसे न हर्ष था न विषाद। वह तो गिलसिया रहती तो लेता, मुकुट बनेगा तो लेगा। तो ये जो तीन भाव हुए हैं उनका कारण जो उत्पादव्यय ध्रौव्य है वह भी तो तत्व सही निकला। प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। तो स्याद्वादसे तत्वका निर्णय होता है, वह मिथ्याज्ञान नहीं है।

अनेकात्मक वस्तुके वस्तुत्वके ही कारणस्वरूप सत्त्व और पररूपासत्त्व की व्यवस्था—विशेषवादने जो यह कहा था कि पदार्थ अपने प्रदेशमें है दूसरेके प्रदेशमें नहीं है यह बात अनेकांतके कारण नहीं किन्तु इतरेतराभावके कारण है। यह बात भी युक्त नहीं जचती क्योंकि इतरेताभावका अर्थ क्या है ? यह तो पदार्थोंका ही निजस्वरूप है कि अपने प्रदेशमें रहे दूसरेके प्रदेशमें न रहे, यह तो पदार्थमें स्वयं पड़ा हुआ है। इतरेतराभाव और क्या चीज है ? दो अंगुली हैं छोटी बड़ी। छोटी अंगुलीमें बड़ी अंगुली नहीं है, बड़ी अंगुलीमें छोटी अंगुली नहीं है, तो यह इन्हीं अंगुलियोंका स्वरूप हुआ ना कि इसमें कोई तीसरा व्यवस्था करने आया है इतरेतराभाव या और कुछ कि एकमें दूसरा नहीं आ सकता। अरे इसका स्वरूप ही यह है कि वस्तु अपने स्वरूपसे रहती है और परके स्वरूपसे नहीं रहती। स्याद्वादमें मूल बात बतायी गई है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है। यह बात तो जरा दिल लगाकर सुननी पड़ेगी। कभी भी समझें। इसके समझे बिना तो निर्मोहता का मार्ग नहीं मिल सकता। और, जब तक जीव निर्मोह नहीं हो सकता तब तक उसे शान्ति नहीं है।

निर्मोहताका उपाय यथार्थज्ञान—जीवका मोह कैसे गले, इसका उपाय क्या है ? ज्ञान। जैसे कहीं पड़ी तो थी सीप और जान गए चांदी तो अब यह चांदी का लोभी पुरुष बहुत विकल्प करता है। मैं इसे उठा लूँ। उसके लिए दौड़ता भी है अथवा यहां वहां तकता भी है, समयकी बाट जोहता है। और, कहीं उसे यह ज्ञान हो जाय कि अरे वह तो सीप है तो देखो सारी विकलतायें उसकी दूर होती हैं ना। इस गृहस्थको यह भ्रम हो गया कि यह स्त्रीका जीव मेरा कुछ लगता है, ये पुत्रादिक परिजन मेरे कुछ लगते हैं। यह अज्ञान अंधकार बन गया तो अब यह पुरुष उनके लिए अपनी भी जान न्योछावर कर देता है। और, खुद भूखा रहता है, बड़े-बड़े परि-

श्रम करता है। कभी शांति नही पाता, क्योंकि उसे भ्रम लग गया है ना। अरे तुम उनके लिए क्या परिश्रम करते हो? जो तुम कर रहे हो परिश्रम अर्थात् उनकी जो नौकरी कर रहे हो, सेवा कर रहे हो, इसमें उनका खुदका पुण्यका उदय है। स्त्री पुत्रोंका ऐसा विशेष पुण्य है कि यह पुरुष तो रात दिन मिलेगा दुकानमें यहां वहां और स्त्रीको पालनामें बैठाये रहेगा न तो स्त्रीसे रोटी बनवायेगा न और कोई काम लेगा। बस वह स्त्री दिन भरमें दसों बार साड़ी बदलेगी और इधर उधर घूमे फिरेगी बतलावो उस पुरुषसे अधिक पुण्यका उदय उन स्त्री पुत्रादिकका है या नही? है। तो फिर क्यों इतनी उनकी फिकर की जा रही है? लेकिन भ्रम लगा है ना कि इन्हें मैं ही तो पालता हूं, ये मेरे ही तो कुछ लगते हैं बस इस भ्रमके ही कारण इस पुरुष को रात दिन जुतना पड़ता है। शांति कहां मिल पाती है?

ज्ञानप्रबोध द्वारा नीराग होनेका उदाहरण—जब लक्ष्मणजीका देहान्त हो गया तो रामचन्द्रजी लक्ष्मणके मृतक देहको ६ मास तक लिए रहे। बहुतसे लोगों ने रामचन्द्रजीको समझाया, पर उनकी बुद्धि तो उस समय जरा क्षोभमें थी सो उन्होंने किसीकी न सुनी। एक देवने पत्थरपर कमल लगानेका काम दिखाया तो रामचन्द्रजी ने पूछा भाई! यह क्या कर रहे हो?....अरे इस पत्थरपर कमल बो रहे हैं। अरे कहीं पत्थरपर कमल भी लग जाते हैं क्या? अरे तो कहीं मुर्दा शरीर खाता पीता भी है क्या? इतनेपर भी रामचन्द्र जी कुछ न समझ सके। एक देवने कोल्हूमें बालू पेलनेका काम दिखाया। रामचन्द्रने पूछा यह क्या कर रहे हो? अरे इस कोल्हूमें बालू पेलकर तेल निकालेंगे। अरे कहीं बालूमेंसे तेल भी निकला करता है क्या? अरे कहीं मुर्दा शरीरमेंसे बोलचाल भी निकला करता है क्या? इतनेपर भी रामचन्द्र जी कुछ समझ न सके। तीसरे प्रयोगमें यह दिखाया कि मुर्दा बैलोंको गाड़ीमें जोत रहे हैं। रामचन्द्रजीने पूछा भाई! यह क्या कर रहे हो? अरे इन मुर्दा बैलोंको गाड़ीमें जोत रहे हैं। अरे कहीं मुर्दा बैल भी गाड़ीमें जोते जाते हैं क्या? अरे कहीं यह मुर्दा देह भी खा पी सकता है क्या? लो इस बार रामचन्द्र जीकी गुत्थी सुलझी, तुरन्त प्रबोध हुआ, ज्ञान तो था, पर व्यासंग हो गया था। उसके बाद फिर वे इतना अडिग रहे कि सीताजीके जीव प्रतीन्द्रने भी नाना हाव भाव करके रामचन्द्र जीको डिगाना चाहा, इसलिए कि रामचन्द्रजीका तपश्चरण अभी भंग हो जाय, यह अभी मोक्ष न जायें, आगे हम और ये दोनों मोक्ष जायेंगे। लेकिन उस समय रामचन्द्र भी न डिगे। तो जब जीवका भ्रम मिटता है तब शान्ति प्राप्त होती है। भ्रम मिटने का साधन है तत्त्वज्ञान। तत्त्वज्ञानका साधन है स्याद्वाद। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् है, पर रूपसे सत् नहीं है। यह पदार्थका ही धर्म है न कि इस व्यवस्थाको बनाने के लिए कोई इतरेताभाव आया।

वस्तुत्व न मानकर इतरेताभाव द्वारा स्वरूपसत्व पररूपासत्वकी

व्यवस्था करनेमें आपत्ति— इतरेतराभावका अर्थ बताया कि एकमें दूसरा नहीं। चौकीमें पुस्तक नहीं। तो पुस्तकमें चौकीका अभाव है चौकीमें पुस्तकका अभाव है. यह अभाव इसकी व्यवस्थायें बना रहा है। लेकिन अभाव कोई अलग पदार्थ नहीं है। चौकीमें ही स्वयं ऐसा गुण है, ऐसी सत्ता है कि वह अपने प्रदेशसे है और दूसरेसे नही है। तभी तो यह निर्णय बनेगा कि मेरा आत्मा मेरेमें ही है। दूसरेके आत्माका मेरेमें कोई सम्बन्ध नही। वे अपने स्वरूपसे हैं। जब पदार्थोंकी यह बात निज तत्वकी बात ध्यानमें आती है तब वहां मोह नहीं रहता। किससे मोह करना। कौन है मेरा। मेरे ज्ञानानन्द स्वरूपके अतिरिक्त लोकमें कुछ है ही नही। अन्तर्दृष्टि करके जरा ध्यान में लावो, मोह मोहमें ही सारा जीवन गवाँ दोगे तो क्या फायदा मिलेगा? लोग असमयमें मर जाते हैं। अपनी भी कल्पना करो। अबसे दो चार वर्ष पहिले ही मर गये होते तो इस सकलमें कहां होते? फिर कहां रहना यह समागम? क्या तब मर न सकते थे? बच गये तो हम दुनियाँके लिए नही बचे अपने लिए बचे, ऐसा मान कर धर्म साधनामें लगना चाहिए। धर्मका यदि सहारा न रखा तो मनुष्य जन्मका पाना न पाना बेकार है। इसलिए ज्ञानका अर्जन करना और धर्म पालन करना यह मुख्य काम हैं। वैभवमें क्या दम है। पुद्गलका ढ़ेर है। इस पुद्गलके ढ़ेरसे मेरे आत्मा को क्या लाभ है? आत्माका लाभ सम्यक्त्व ज्ञान और चारित्रमें है, ऐसे रत्नत्रय धर्मकी सेवा करके अपना जीवन सफल करना चाहिए।

वस्तुस्वदृष्टिसे ही अन्योन्याभावका अवरोध– वैशेषिकसिद्धान्तवादियोंने स्याद्वादके तरीके और मोक्षके स्वरूपपर अपना पक्ष बताया था। उसके उत्तरमें कह रहे हैं कि एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें जो अभाव होता है वह वस्तुकी खासियत है। इतरेतराभावके कारण एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अभाव है. यह बात सही नही है। इतरेतराभावकी बात कहना तो फलित सिद्धान्त है। जैसे यह चौकी पुस्तकमें नही, पुस्तक चौकीमें नहीं, इसकी व्यवस्था करने वाला इतरेतराभाव नही है, किन्तु वस्तु की सत्ता ही स्वयं अपने आपमें व्यवस्था कर लेती है। अब ऐसी व्यवस्थित वस्तुवोंको निरखकर यह कहना कि उसमें इसका अभाव है, इतरेतराभाव है तो यह तो फल बताया गया है। कोई इतरेतराभाव जिसकी सत्ता हो और वह व्यवस्था करे ऐसी बात नही है। यदि इतरेतराभावको कोई वास्तविक चीज माना जाय तो बताओ कि वह इतरेतराभाव इस चौकीसे अभिन्न है या भिन्न है अर्थात् चौकीमें पुस्तकका अभाव है यह पुस्तकाभाव चौकीमें अभिन्न है क्या? अगर अभिन्न है तो चौकी कभी नष्ट हो जाय तो इसका अर्थ है कि पुस्तकाभाव नष्ट हो गया तो पुस्तक उत्पन्न हो जाना चाहिये, पर ऐसा तो नही। यदि कहो कि चौकीसे वह इतरेतराभाव [पुस्तकाभाव] भिन्न है तब फिर भिन्न ही रह गया तो चौकी और पुस्तकमें अन्तर कैसे डालोगे? इस कारण इतरेतराभाव अलग कोई है और वह व्यवस्था करता है यह सही नही है, वस्तु अनेकांतात्मक है, यह सिद्ध किया जा रहा है। अब देखिये! जब तक यह

निर्णय न हो जाय किसीको कि प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तात्मक है वह व्यापार प्रवृत्ति नहीं कर सकता। पदार्थ वस्तुतः तो अवक्तव्य है न उसमें कोई धर्म बता सकते न उसमें कुछ वर्णन चल सकता लेकिन अवक्तव्य अखण्ड वस्तुमें जब हम कोई परिज्ञान करना चाहते हैं तो उसका तरीका यह है कि हम स्याद्वादके द्वारा अपेक्षा लगाकर उसमें धर्मको देखें। ऐसा किए बिना यथार्थ निर्णय नहीं हो सकता। फिर दूसरी बात यह कि यह कहकर जो वैशेषिकने खण्डन किया था कि कोई भी पदार्थ अन्य कार्योंका अकर्ता नहीं है यह तो इतरेतराभावसे बनता है। तो यहाँ पहिले तो कार्य-कर्तृत्व ही सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि पदार्थ अगर सर्वथा नित्य है तो कार्य कैसे होगा अनित्य है तो कार्य क्या हो सकता।

क्रमानेकान्तसे मुक्तमें मुक्तत्वके प्रतिपक्ष धर्मकी सिद्धि—यह कहना ठीक नहीं कि फिर तो मुक्तिमें भी अनेकांत लगावें कि मुक्त जीव मुक्त भी हैं और संसारी भी हैं। यह दूषण नहीं हैं। एकांत दो प्रकारके होते हैं क्रमानेकांत और अक्रमानेकांत। क्रमानेकांतकी अपेक्षासे यह कह सकते कि यह जीव पहिले संसारी था अब मुक्त है। अनेकांतमें जब हम ऐसे क्रमको दृष्टि रखेंगे तो यह भी कह सकते। और फिर इस सम्बन्धमें सीधी बात यह है कि मुक्तके साथ संसारी प्रतिपक्षमें नहीं आता, किंतु मुक्तके साथ अमुक्त प्रतिपक्षमें आता है। प्रभु सिद्ध भगवान मुक्त भी हैं अमुक्त भी। मुक्त तो रागद्वेषसे छूट जानेके कारण हैं और अमुक्त अपने ज्ञानादिक गुणोंसे हैं। मुक्तके मायने जो छूट जावे। प्रभु सिद्ध भगवान छूट भी चुके और नहीं भी छूटे। छूटे तो कर्मोंसे, पर अपने स्वरूपसे ज्ञानसे आनन्दसे इनसे तो नहीं छूटे। तो वहाँ कह सकते हैं कि प्रभु मुक्त भी हैं और अमुक्त भी हैं।

अनेकांतमें भी अनेकांतरूपता—ऐसा भी कहना योग्य नहीं कि तब तो अनेकांत में 'भी' अनेकांत लगालो कि अनेकांत 'भी' है और एकांत 'भी' है। कहते हैं कि यह बात भी सही है, इसमें दूषणकी बात नहीं है। अनेकांत अनेकांत 'भी' है और अनेकांत ही है ऐसा एकान्त नहीं है ऐसा अनेकान्त 'भी' मान लो। इसलिए यहां दूषण नहीं आता। कैसे मानते हम एकान्त कि अनेकांतसे, प्रमाणसे किसी वस्तुको हमने जाना, अब उस जानी हुई वस्तुमें जो एक-एक धर्म है, जो नयोंके द्वारा जाना जाता है प्रतिपादित किया जाता है तो नयोंकी दृष्टिसे वह अनेकांत एकांतका अविना-भावी है, अनेकांत एकान्त बिना नहीं हो सकता। सुनयोंका एकान्त जब मान लिया जायगा तब ही हम अनेकांत कह सकते। इससे यह कहना कि अनेकांत भावनासे यह जान लिया, मोक्षशिलाके ऊपर एक शुद्ध शरीरको प्राप्त करता है उसका नाम मोक्ष है, यह कहना ठीक नहीं है। मुक्ति मोक्ष शिलापर पहुँचनेसे नहीं होता, किंतु स्वभाव विशुद्ध हो जाय और सर्व उपाधियां दूर हो जायें तब मोक्ष कहलाता है।

विकल्पनिद्राकी परेशानी दूर करनेके लिए जागरण—ये संसारी जीव

सब परेशान हैं। कोई राग करके, कोई द्वेष करके परेशान है, कोई अज्ञानसे परेशान है। इस संसारमें जो भी समागम दिख रहे हैं इनको अपनाकर ये जीव दुखी हो रहे हैं। इनके ये दुःख कैसे मिटें इसका उपाय उन्हें जरूर करना होगा। और, इसके उपाय करनेका अवसर है यह मनुष्य भव। श्रेष्ठ मन मिला है, बुद्धि भी मिली है, जैन धर्मका समागम प्राप्त हुआ है, बड़े बड़े ऋषिसंतोंने तपश्चरण करके बड़ी साधना करके जो अनुभव प्राप्त किया था करुणा करके उन्होंने वह अनुभव ग्रन्थोंमें लिख दिया है वे हमें आज प्राप्त होते हैं। तो कितना सुन्दर अवसर है, और जब संसारके लगावपर दृष्टि डालते हैं तो यह व्यासङ्ग कितना असारभूत काम है। एक जीवका दूसरे जीवके साथ सम्बन्ध क्या है। जब पूर्ण सत् प्रत्येक जीव है, किसी जीवका सत्व किसीकी उपेक्षाको रखकर नहीं है तो किसीको कोई लोग कैसे जानें? पहिले दो बातोंपर ध्यान देना है। जिसे सारा मोही जगत मानता है कि यह मेरा अमुक है, मेरा कुटुम्ब है, मेरा वैभव है, ऐसा जो ममकार करता है तो विचारना चाहिए कि वस्तुस्थिति क्या हो सकती है। और ये जीव ममकार क्यों किये जा रहे हैं। ममकार करने वाले लोग भी आखिर मरते हैं, बिछुड़ते हैं, तो फिर ममकारकी दृष्टिसे भी ममकार सारभूत चीज नहीं है। स्वरूपदृष्टिसे भी सारभूत चीज नहीं है। अनन्त जीवोंमेंसे अटपट कुछ जीव घरमें इकट्ठे हो गए तो उन्हें मान लिया कि ये मेरे हैं, किसी जीवकी कषायसे अपनी कषाय मिल गई तो उसे मान लेते कि यह मेरा मित्र है, वस्तुतः कोई किसीका यहाँ मित्र है क्या? कोई किसीका कुछ कर सकने वाला है क्या? सब अपनी अपनी कषायके अनुसार चेष्टा करते हैं। तब यहां किसमें अपने चित्तको रमाया जाय। विकल्प करना व्यर्थकी हैरानी है।

मोह चिन्तासे लाभकी अशक्यता—जब यह स्पष्ट है कि यहां कोई किसीका मित्र नहीं, अगर कषायसे कषाय मिल गयी तो मित्र मान लिया और अगर अपनी कषायसे दूसरेकी कषाय विरुद्ध दिखी, तो उसे अपना विरोधी मान लिया। वस्तुतः यहां न कोई किसीका मित्र है न कोई किसीका विरोधी है। फिर उस ही रफ्तारमें बहे जाना, जो कुछ रफ्तार हम पहिलेसे ही करते आये हैं, जो ढङ्ग बनाया है ममकार करते रहना, अपनेको जलाना, अपनेको बरबाद करना उस ही वेगमें, उस ही पद्धतिमें रहे तो अपना भला नहीं है। अपनेको साहस करना होगा कि वस्तुतः मुझे दुनियाका कोई भी पुरुष नहीं जानता। यदि आप मेरे स्वरूपको जानते हैं तो आपके लिए मैं विषय नहीं रहा, आपके लिए चैतन्यस्वरूप रहा विषय। और यदि नहीं जानते यथार्थतः मेरे स्वरूपको तो जिसे जानते होंगे अपने मनसे कल्पनायें करके, आप उसके प्रति मित्रता या बैरका विकल्प कर सकते । यही बात सब जीवोंकी है। तो जब सब काम हमें अपने आप ही अकेलेसे अपनको करना है तो हमें क्यों न कुछ विशेष अपना ध्यान रखना चाहिये। दूसरेके विकल्प–विकल्पमें ही समय गुजरे, जिसे कहते हैं मोह चिन्ता, पर जीवोंके सम्बन्धमें मग्न होकर उनके ही विकल्प बनाये रहना यह तो

अधमाधम चिन्ता कहलाती है। उसमें अपनेको लाभ नही मिलनेको है। अपना लाभ मिलेगा खुदको खूब ध्यानमें रखे—मैं ज्ञायकस्वरूप हूँ, ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञानमात्र कहनेमें जो कुछ समझानेके लिए कहा जाता है वह सब गर्भित हो जाता है। अपने आपके उपयोगको इस तरह बनायें कि यह ज्ञानज्योति है केवल ज्ञानप्रकाशमात्र, जाननमात्र है। जिस जाननमें रूप, रस, गंध, स्पर्श तो नही है, जिस जाननमें केवल एक अमूर्त जाननभाव आता है।

स्वका संवेदन हो सकनेका कारण—हम चूँकि जानन सदा किया करते हैं, चाहे किसी प्रकार करें, सो हम जाननके स्वरूपका परिचय पा सकते हैं। यद्यपि कोई भी अमूर्त पदार्थ हमारे देखनेमें नही आ रहा, हम उसको स्पष्ट जान भी नही सकते। लेकिन ये अमूर्त पदार्थ चूँकि ये स्वयं ही हैं इसलिए स्वयं जाननेमें आ सकते हैं। हम धर्म, अधर्म, आकाश काल द्रव्यको नही जान सकते हैं। वे अमूर्त हैं। उसके विषयमें हम चिन्तन करते हैं, आगमके अनुसार, युक्तियोंके अनुसार। अन्य अमूर्त पदार्थ स्पष्ट सम्वेदनमें आ जाय अपने अनुभवमें आये कि यह है, ऐसा तो नही होता तो उन्हीं पदार्थोंकी भाँति अमूर्त मैं भी हूँ। आकाशकी भांति अमूर्तिक मैं भी हूं लेकिन मैं चेतन हूँ और स्वयंपर सब बातें बीतती हैं इस कारणसे मैं अपने अन्दरकी बातोंको तत्त्वको, गुणोंको, अवगुणोंको, स्वरूपको चेत सकते हैं उसका परिज्ञान कर सकते हैं।

स्वके ज्ञानमात्र अनुभवनकी आदेयता—हम सामायिकमें अधिकतर इस ओर ध्यान दें कि अपने चित्तको अपने आपमें मग्न करदें, परके विचारोंको, विकल्पोंको अन्य किन्ही पदार्थोंको ध्यानमें न लायें। कोशिश करें ऐसी कि जो बाह्य पदार्थ ज्ञानमें आते हैं उनको न आने दें। अपने उपयोगको बदल दें, किसी भी परतत्त्वको ध्यानमें न लायें, आते हैं ध्यानमें तो झट वहाँ ही बातें करें। तुमसे मेरा क्या भला होनेका है। तुम क्या मेरे साथी हो सकते हो ? तुमसे मेरा क्या हित सम्भव है ? मत परेशान करो। मेरे दिलसे निकलकर विराम लो। तो परका विकल्प तोड़कर विश्रामसे बैठने का यत्न करें और अपने अन्दर ऐसा निरखनेका भाव बनायें कि मैं ज्ञानमात्र हूं। केवल ज्ञानस्वरूप जाननमात्र और ऐसी स्थितिमें लगेगा ऐसा कि कुछ मंद मंदसा उजेला है, एक सामान्य प्रकाश है, चेतनताको लिए हुए है। कुछ उसमें प्रतिभास तो है, वह प्रतिभासस्वरूप है, उसमें दूसरेका प्रतिभास नही आ रहा, मगर खुद प्रतिभास स्वरूप है, ऐसा एक सामान्यतया ज्ञानप्रकाश ज्ञानमें लेनेका यत्न करें। यह यत्न हो सका तो समझिये कि दुर्लभ मानव जीवन सफल कर लिया, यह अनुभव न बन सका तो हमने वह कुञ्जी नही प्राप्त कर पाई, जिसके प्रतापसे संसारके संकट सदाके लिए मिट सकते हैं। अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेके यत्नमें लगाना चाहिये और बाहरी बातें—कुछ थोड़ासा नुकसान हो गया तो क्या हो गया ? धनका नुकसान हो गया या कोई सम्मान-अपमान सम्बन्धी नुकसान हो गया तो ये तो तुच्छ बातें हैं। ये कोई

महत्त्वपूर्ण बातें नहीं हैं । हो गया तो हो गया । महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हम जितने समय अपनेको ज्ञानप्रकाशमात्र अनुभव कर सके उतना हमने लाभ पाया और इसी स्वरूपसे चिगकर बाह्यकी ओर खिचकर हम कुछ भी श्रम कर डालें दुनियाको दिख भी जाय कि बड़ा श्रम किया, इसने बड़ा उपकार किया, यह बड़ा कर्मठ है । लेकिन उन बातोंसे, उन दिखावटोंसे आत्माको कुछ लाभ नहीं होनेका । आत्माका लाभ तो बस इसीमें है कि अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव किया जाय ।

विशुद्ध ज्ञानका प्रसाद—स्वयंमें विराजा हुआ वह परमात्मतत्त्व जो शक्ति रूपसे है उसकी झलक होगी, उससे भेंट होगी और उस समय जो एक अलौकिक आनन्द प्रकट होगा बस उस अनुभवके बाद फिर जगतके असार विषय न रुचेंगे । जब तक निज सहज आनन्दकी अनुभूति न होगी तब तक बहुत कोशिश करे कोई कि मैं विषयोंसे विरक्त हो जाऊ विषयोंमें हमारी रुचि न रहे, पर मूलतः रुचि हटती नहीं । और, कभी हट भी जाय तो वह एक मनके विषयकी रुचि बढ़ाकर हटती है । तब लोकमें प्रशंसा लूटना, इस ओर दृष्टि जाती है । जब तक अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव करनेके प्रसादसे उत्पन्न हुए आनन्दका अनुभव नहीं प्राप्त होता । तब तक वास्तविक मायनेमें विषयोंसे रुचि नहीं हट पाती । तो क्या चीज प्राप्त करना है, ज्ञानमात्र अनुभव करना है, इसके लिये हमें तत्वज्ञान चाहिए । तत्वज्ञानका उपाय है स्याद्वाद । सर्वप्रथम स्याद्वादसे ही हमें निर्णय प्राप्त होता है । निर्णय पानेके बाद फिर उसका जो अवक्तव्यरूप है, वस्तुस्वरूपका जब उसके दर्शन हो जाते हैं तो उस अवक्तव्य निज तत्वमें प्रवेश कर जावे, जिसमें सम्यक् एकांत भी छूट जाते । समस्त विकल्प छूट जाते, प्रमाण, नय, निक्षेपकी कल्पनायें भी छूट जाती । जब एक अभेद हो गया उन तत्वसे जो इस निर्णयसे प्राप्त किया जाता जो कि उद्देश्यमें था तो फिर सर्व विकल्प छोड़कर आत्मलीन होनेकी बातमें क्या सन्देह रहता है । तो स्याद्वादसे निर्णय होता, निर्णयके बाद यह बुद्धि उत्पन्न होती कि यह हेय तत्व है, इसमें न लगना, यह आदेय तत्त्व है, इसमें अपनेको लगाना और उस आदेय तत्वमें आदरके प्रतापसे फिर उस भव्यके जो अन्तःप्रकाश पैदा होता है, उससे समाधि बनती है, निर्विकल्प समाधि अन्तर्मुहुर्त उत्कृष्ट रूपसे हो तो फिर वहाँ कैवल्य प्राप्त होता है । उस ही परम विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है ।

गुणोच्छेदवादियोंद्वारा परमात्मलयकी मोक्षस्वरूपताके निराकरणका उद्योगारम्भ—अब यहाँ विशेषवादी जिनके मोक्षका स्वरूप यह है कि आत्मामेंसे ज्ञान सुख दुःख इच्छा आदिक सब नष्ट हो जायें आत्मा केवल एक चित्स्वरूप रहे, उसमें कोई प्रवृत्ति न रहे, परिणमन न हो औपाधिक बातें न हों तो उसका नाम मोक्ष है अर्थात् ज्ञानरहित आत्माकी अवस्थाका नाम मोक्ष है, ऐसा मोक्षस्वरूप मानने वाले वैशेषिक पुनः कहते हैं कि मोक्ष तो गुणोच्छेदनका ही नाम हो सकता है । आत्मा

कोई एक ज्ञानात्मक नही, जो उस ज्ञानात्मक आत्माके विकासका नाम मोक्ष कहा जाय। जो एक सिद्धान्त यह मानता है कि आत्मामें जब एकत्वका ज्ञान होता है, जब परमात्मामें लय होता है उस हीका नाम मोक्ष है, यह असङ्गत है।

ब्रह्माद्वैतवादमें मोक्षका स्वरूप—ब्रह्माद्वैतसिद्धान्तमें एक ब्रह्म ही तत्त्व है, उस ब्रह्मतत्त्वका परिज्ञान जब नही होता तो यह जीव संसारमें रुलता है। तथा जब यह जानता है कि मेरी सत्ता अलगसे कुछ नहीं है उस ही ब्रह्मस्वरूपका भुकाव प्रकाश पड़ता है तब मेरी सत्ता होती है। मेरी सत्ता अलग नहीं है, ऐसा जानकर अहंकार छोड़ देता है तब परमात्मामें लीनता होती है, यही मोक्ष है। जब तक यह जीव अपनी सत्ता न्यारी समझता है कि मैं स्वतंत्र सद्भूत हूं तो इसे अहंकार जगता है। जब यह जान लेता कि मेरी सत्ता नही है अलगसे, ब्रह्मका ही प्रकाश भुकाव आता है तब मैं कुछ चेष्टावान हुआ करता हूँ ज्ञानवान हुआ करता हूँ। मैं तो अलग कुछ वस्तु नहीं यों एक आत्माके एकत्वको जब जान जाता है कि लोकमें सर्वत्र केवल एक ही ब्रह्म है, दूसरा कुछ नहीं है तो ब्रह्मके एकत्वको जाननेके बाद अपने आपमें उस ब्रह्मस्वरूपपर न्योछावर कर देता है। उसमें लीन हो जाता है तब इसका मोक्ष कहलाता है।

भेदप्रतिषेधपूर्वक आत्माके सर्वैकत्व पर प्रश्नोत्तर—ब्रह्माद्वैतवादके विरोध में वैशेषिक कह रहे हैं कि आत्माके एकत्वका ज्ञान ही मिथ्यारूप है। कैसे है आत्मा एक ? आत्मा अनन्त हैं और गुण भी अनन्त हैं। कर्म भी अनन्त हैं। सामान्य विशेष समवाय ये एक एक हैं। अभाव भी अलग पदार्थ हैं इस प्रकार पदार्थोंकी व्यवस्था है। आत्मा एक है ही नहीं। फिर उसका एकत्व मानना, कल्पनायें करना जबरदस्ती कि सारे लोकमें एक आत्मा ही आत्मा छाया है यह तो मिथ्यारूप है, वह मोक्षका साधक नही हो सकता। ब्रह्माद्वैतवादी कहता कि नही। आत्मा ही एक वास्तविक सत् है उसके सिवाय अन्य भेदमें प्रमाण काम नहीं करता, ये सब भेद कल्पनासे हो गए हैं। प्रत्यक्ष तो पदार्थ निरखना भेदको नही। अज्ञानसे ये सब न्यारे-न्यारे पदार्थ माने हुए हैं। जो ज्ञान होता है कि आत्मा अनन्त हैं। जो जो भी ज्ञान किए जा रहे हैं ये सब कल्पनासे किए जा रहे हैं क्योंकि प्रत्यक्ष तो विधिको, एकको विषय करता है। प्रत्यक्ष चीजको विषय करता है। ये ५ पदार्थ रखे हैं ऐसा जो ५ का जानना है और इससे इतनी दूर दूर रखे हैं, ये एक दूसरेसे न्यारे-न्यारे हैं, इनको प्रत्यक्ष ज्ञान नही जाना करता, इन्हें तो कल्पना जानती है, जिसे स्याद्वादी लोग भी कहते हैं कि यह श्रुतज्ञानका विषय है, मति ज्ञानका विषय नही है। ये पदार्थ इतने हैं, ये पदार्थ ऐसे-ऐसे भेद वाले हैं, ये सब भेद श्रुतज्ञानसे जाने जाते हैं। सो प्रत्यक्ष तो केवल विधिको जानता है। तो प्रत्यक्षसे तो आत्मा जान लिया जायगा मगर इतने पदार्थ हैं, न्यारे-न्यारे यह प्रत्यक्षसे नहीं जाना जा सकता।

आत्माके एकत्वका यथार्थरूप और आत्मस्वरूपकी एकत्व कल्पनातीतता - अब ब्रह्माद्वैत और वैशेषिकके परस्पर वादविवादके पश्चात् स्याद्वादी कहता है कि यह कहना ठीक है —आत्माके एकत्वका ज्ञान होनेसे परमात्मस्वरूपमें लय होता है। लेकिन आत्माका एकत्व क्या है ? सर्व लोकमें केवल एक ही आत्मा है। यह एकत्व नहीं कहलाता। किंतु प्रत्येक आत्मामें जो स्वरूप बसा हुआ है वह स्वरूप सबका समान है वह स्वरूप एक है, यह नही कि मेरे आत्माका स्वरूप और तरहका है। अन्य आत्माओंका स्वरूप और तरहका है। तो उनका जो स्वरूप है चैतन्यमात्र, उस एकको जान लिया जाय, तब परमात्मस्वरूपका लय होता है। उस चैतन्यस्वरूपको न हम एक कह सकते न अनेक कह सकते, क्योंकि जहां एक कहें तो वहां भी एक व्यक्ति बन जायगा वह स्वरूप। चैतन्यस्वरूप एक है। तो कितना बड़ा है या तो सर्वलोक व्यापी है या एक देहमें विराजा इतना है या कुछ भी कल्पना करो। उस चैतन्यस्वरूपके बारेमें अगर हम एक भी कहते हैं तो भी उसके प्रयोगको, सीमाभेद व्यक्तिपना बन जाता है। चैतन्यस्वरूपको हम अनेक कहते हैं तब तो स्पष्ट ही व्यक्तिपना आ जाता है। चैतन्यस्वरूपका अनुभव संख्या, आकार आदिक विकल्पसे नही हो सकता। वह चित्स्वरूप मात्र है, न एक है न अनेक। जैसे यह चित्स्वरूप परपदार्थोंसे निराला है, रागादिक भावोंसे न्यारा है उन रूप मैं नहीं हूं ऐसे ही आत्मामें उत्पन्न होने वाले मतिज्ञान आदिक छुटपुट ज्ञान भी यह मैं नहीं हूं मैं चित्स्वरूप हूं। कर्मक्षयसे उत्पन्न हुआ केवल ज्ञानरूप व्यक्तियां भी मैं नही हूं। मैं शाश्वत हूं ये तो कभीसे प्रकट होते हैं। ऐसा और आगे भी यदि यह विचारा जाय कि चलो मैं केवल ज्ञानरूप भी नही मानता, मतिज्ञानादिक रूप तो हूं ही नही, रागादिक रूप हूं ही नही। परपदार्थों रूप हूं ही नहीं, किन्तु मैं चित्स्वरूप तो हूं। आचार्य संतजन स्पष्ट कहते हैं कि जब तक एकपनेका संकल्प रहेगा कि मैं एक चित्स्वरूप हूं तो एकत्वका संकल्प भी हमें उस चिदनुभूतिमें बाधक ही बनेगा। वह तो विकल्प जालोंसे रहित केवल वह तो वही है। निर्विकल्प होकर अन्तः जो जाना गया वह तो वही है। ऐसे उस चैतन्यस्वरूपका दृढतम बोध होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसमें किसी भी प्रकारका विवाद नही है।

सहज विश्राममें सहजस्वरूपका उद्‌बोधन - भैया ! अपनेको जानना चाहिए। यदि कोई पुरुष ऐसा साहस बनाये कि मुझे तो किसीकी नही सुनना, किसीकी नही मानना। धर्मके नामपर भी कोई ऋषि अपनी गाते हैं कोई अपनी गाते हैं, तो एक बार हमें किसीकी भी बात न सुनकर अपने आपका निर्णय करना चाहिए कि मैं क्या हूं। बड़ी ईमानदारीसे करें किसीका भी पक्ष न रखकर, परका विकल्प हटाकर किसी परको अपनेमें स्थान न देकर यदि विश्रामसे बैठें तो वह अपनेमें अनुभव कर सकता है। ये पशु पक्षी ऋषि संतोंकी बातें कहां सुनते हैं, उनका कहां अर्थ जानते हैं। उनको जो भी अनुभव होता है वह किसके बलपर होता है। निष्पक्ष ही तो उनका विश्राम होता है उस ही विश्रामके बलसे उनके अनुभूति जगती है फिर

उसके बाद ये साधक स्वयं जानेंगे कि किन संतोंकी वाणी कितनी चित्स्वरूपकी अनुभूति कराने वाली है स्वयं समझ जायेंगे। तो हमें हर प्रकारसे आगम पढ़कर ऋषी संतोंकी वाणी सुनकर कोशिश यह करना है कि हम अपनेको अनुभव करें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। केवल ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसी एक धुनि बनायें, और कुछ न रुचे। गुप्त ही गुप्त। किसीको कुछ दिखाना नही, किसीमें कुछ बनना नही। मैं किसीके लिए कुछ हूँ ही नही। दुनियाके लिए मेरी सत्ता नही अपनेमें ही अपने ही सहज साम्राज्यको जानूं और अनुभव करता रहूं ऐसी ज्ञानमात्र अनुभवनेकी हमारी धुन बने तो इसमें हम अपना जीवन सफल कर सकते हैं और जन्ममरणकी यह परम्परा मिट सकती है, संसारके संकटोंसे सदाके छुटकारा रखना हो सकता है।

शब्दाद्वैतावगमकी मोक्षोपायताका निराकरण—एक शब्दाद्वैतवादका सिद्धान्त है जो यह मानता है कि जगतमें सब कुछ शब्द ही शब्द है। शब्दमय सारा विश्व है और ऐसा समझनेकी युक्तियां हैं कि देखो ना जैसे कि लोग कहते हैं कि सब कुछ ज्ञान ही ज्ञान है। ज्ञानके सिवाय और कुछ नही। जैसे ज्ञानमें आया कि यह महल, यह चौकी, यह मनुष्य आदि तो ये सब हैं नही, केवल विचार है कल्पना है, ज्ञानसे यह मालूम पड़ता है। जैसे स्वप्नमें सभी चीजें जो भी दिखती हैं वे सत्य मालूम होती हैं पर वे कुछ भी सत्य नही हैं। वहां तो केवल ज्ञान ही ज्ञान है इसी प्रकार यह विश्व जो दिख रहा है, यह कुछ नही है, केवल ज्ञान ही ज्ञान है। तो जैसे ज्ञानाद्वैतवादी सारे विश्वको ज्ञान ही ज्ञान मानते हैं। जरा अब निरखे तो सही कि ज्ञान जो यहां उत्पन्न होता है वह शब्दसे बींधा हुआ ही उत्पन्न होता है। कोई ज्ञान ऐसा समझ में नही आता कि उसके साथ शब्द न हो। जैसे हम आप किसी भी चीजको जानते हैं तो जाननेके साथ ही उसके नाम रूप आदिकका कुछ भीतरमें अन्तर्जल्प होता है, तो सारे ज्ञान शब्दोंसे बींधे हुए हैं इसलिए जगत शब्दमय है और इस तरहका ज्ञान हो जाय तो मोक्ष हो जायगा। इसके समाधानमें संक्षेपमें ही समझ लीजिये कि यह सारा जगत केवल शब्दमय है, इसकी सिद्धि नही है। कदाचित् जबरदस्ती ऐसा मान भी लिया जाय तो वैसा जान लेनेसे आत्मामें प्रभाव क्या पड़ा कि जिससे मोक्ष हो गया। तो शब्दाद्वैत कोई परमार्थ तत्त्व ही नही है और फिर मोक्षका साधक बताना, इसका तो कोई सम्बन्ध ही नहीं बैठता है।

मोक्षोपाय व मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें प्रकृतिवादका मन्तव्य—अब मोक्षोपाय व मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें प्रकृतिवादी कहते हैं कि प्रकृति और पुरुषमें भेद की उपलब्धि होना यही मोक्षका कारण है और मोक्ष भी क्या है। चैतन्यमात्र स्वरूप में अवस्थित रह जाना इसका नाम मोक्ष है। यहां इतना संक्षेपमें जान लीजिये कि प्रकृति मायने मूल सत्त्व एक अचेतन, पुरुष मायने आत्मा। आत्मा और अचेतन प्रकृति का भेदविज्ञान होनेसे मोक्ष [illegible] मोक्ष होता है उसका स्वरूप भी क्या

है ? चैतन्यमात्र स्वरूपमें आत्मा रह गया। विवरण कर रहे हैं वे स्वयं कि प्रधान जितनी प्रवृत्ति करता है वह पुरुषके प्रयोजनका सम्पादन करनेके लिए करता है पुरुष का काम बने आत्मापर यह प्रधान बड़ा मेहरबान है इसीसे मानो इस प्रकृतितत्वका प्रधान नाम पड़ा है। अब पहिले प्रकृति और पुरुषका संक्षिप्त स्वरूप जानो। पुरुषके मायने है आत्मा केवल चैतन्यस्वरूप और प्रकृतिके मायने हैं एक ऐसा अचेतन तत्व जिसका यह सारा ठाठबाट है। उस प्रकृतिसे ही ज्ञान, इंद्रिय, शरीर, अहंकार आदिक उत्पन्न होते हैं। पुरुष तो, आत्मा तो केवल चित्स्वरूप मात्र है और यह प्रकृति प्रधान है जो कि ये सब खटपटे करता है। यह प्रधान पुरुषको खुश करनेके लिए काम किया करता है। तो प्रकृतिका सारा काम पुरुषके प्रयोजनके लिए है और वह पुरुषका प्रयोजन अथवा पुरुषार्थ – पुरुषार्थ शब्दका अर्थ है पुरुषका अर्थ, पुरुषका प्रयोजन। वह दो प्रकारका है। शब्दादिक विषयोंकी उपलब्धि हो जाना, जैसे वर्तमानमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक भोगना। देखिए यह प्रधान बड़ा उपकारी है इस आत्माका हर प्रकारसे उपकार करना चाहिए, इस प्रधानने मानों यही व्रत ले रखा है। जब यह पुरुष भोग सेवनमें राजी है तो भोगसाधन भी यह प्रधान संपादित है। तो एक पुरुषार्थ है शब्दादिक विषयोंकी उपलब्धि हो जाना और दूसरा है पुरुष और प्रकृतिका विवेक हो जाना। इस दूसरे पुरुषार्थसे आत्माको मोक्ष होता है। तो पुरुषमें व प्रधानमें विवेक पैदा हो जाय, कर्मनें व आत्मामें, प्रकृतिमें व चैतन्यमें विवेक आ जाय यह भी प्रधान सम्पादित करता है। तो प्रधानके द्वारा किए गए दो पुरुषार्थ हैं—एक तो भोग विषयोंके साधनोंकी उपलब्धि कराना और दूसरे –पुरुष और प्रकृतिमें विवेक उत्पन्न कराना। जब प्रकृति और पुरुषमें विवेक उत्पन्न हो जाता है यह प्रकृति है यह आत्मा है ऐसा भेद विज्ञान हो जाता है तो इस पुरुषार्थके सम्पन्न होनेपर फिर यह प्रधान शरीरका सम्पादन नहीं कराता है, इसीका नाम मोक्ष है।

मुक्तके प्रति प्रकृतिके अनुपसर्पणके कारणका प्रकृतिवादमें कथन— जब आत्माने यह समझ लिया कि यह प्रधान तो बड़ा दुष्ट था, यह प्रकृति तो बड़े खोटे स्वभावकी थी इसने तो जन्ममरण कराया, दुःखोंमें रखा तो फिर यह प्रकृति कि इस आत्माने तो मुझे दुष्टरूपसे परख लिया है कि यह मैं प्रकृति दुष्ट हूं, तो फिर यह प्रधान अर्थात् प्रकृति उस पुरुष अर्थात् आत्माके पास नही फटकती, अर्थात् आत्माके पास नहीं जाता, न आत्माके लिए शरीर सम्पादन करता है। इस विधिसे आत्मा का मोक्ष होता है। प्रकृतिवादी कह रहे हैं—अच्छा, देखिये समयसारमें भी लिखा है कि प्रकृति चेतन्यताके लिए, आत्माके लिए उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। इसमें भी तो यही बात आयी ना। प्रकृतिके उत्पन्न होनेके मायने क्या कि यह प्रकृति भोग साधन शब्दादिक विषयोंके रूपमें परिणम जाय ताकि यह आत्मा राजी रहे और इसे आनन्द प्राप्त हो। तो पुरुषके प्रयोजनके लिए ही यह प्रकृति उत्पन्न हुई ना, और जब यह प्रकृति नष्ट होती है तो भी आत्माके लिए नष्ट होती है अर्थात इस प्रकृतिने इस

आत्माको भेदविज्ञान करा दिया, प्रकृति और पुरुषमें विवेक करा दिया। विवेक करनेसे अब यह आत्मा स्वतन्त्र हो गया और मुक्त हो गया। प्रधान तो नष्ट हो गया। नष्ट हो जावे पर उसकी तो यह आदत है कि सब काम पुरुषके लिए करे। तो प्रकृति पुरुषके लिए उत्पन्न होती है और पुरुषके लिए नष्ट होती है. इस तरहसे इस प्रधान द्वारा जब प्रकृति और पुरुषका विवेकोपलम्भ हो जाता है तब आत्माका मोक्ष होता है और वह मोक्ष इस ही स्वरूप है कि आत्मा अपने चैतन्य स्वरूपमात्रमें अवस्थित रह गया, अब ज्ञानका कोई काम नहीं रहा।

प्रकृतिका असत्त्व होनेसे प्रकृतिपुरुषविवेकोपलम्भके मोक्षकारणत्वकी सिद्धिका अभाव—उक्त मोक्षोपाय व मोक्षस्वरूपके संबन्धमें अब समाधान देते हैं कि पहिले तो प्रधान ही कुछ है सत्, यह बात नहीं सिद्ध होती है। प्रधान असत् है। लोकमें केवल ६ जातिके ही तो पदार्थ हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। प्रधान क्या चीज हुआ ? जितने कार्य होते हैं वे अपने अनुकूल उपादानसे ही उत्पन्न हो सकते हैं। यहां कितने परस्पर विरुद्ध कार्य ज्ञात हो रहे हैं, कोई ज्ञानादिक है तो कोई रूप रस आदिक कार्य है और कोई रूप रस आदिक कार्य है तो कोई इंद्रिय-कार्य है। और गति हेतुत्व स्थिति हेतुत्व परिणमन हेतु व आदिकी ओर तो दृष्टि ही नहीं गई। तो जितने कार्य हो रहे हैं वे कार्य अपने अवलम्बित द्रव्यके अनुसार हो रहे हैं। प्रधान कोई अलगसे तत्व नहीं है। अथवा मान भी लो कि प्रकृति कोई है तत्व प्रकृतिका अर्थ जरा जल्दी समझनेके लिए कर्म मान लीजिए। जिन कर्मोंके उदयके निमित्तसे ये शरीर, इन्द्रिय आदिक मिलते हैं कर्मोंका क्षयोपशम होनेपर आत्मामें ये ज्ञान होते हैं। तो यह विश्वकी सब चहल पहल इस प्रकृतिकी है, आत्माकी नहीं है। यों प्रकृतिका स्वरूप माना गया है।

पुरुषस्थ निमित्तकी अपेक्षा बिना प्रकृतिकार्य माननेपर मुक्तमें भी देहसम्पर्कका प्रसङ्ग—मान भी लो प्रकृति कोई तत्व है तो अब यह बतलावो कि यह प्रकृति जो सारे काम किया करती है शरीर, इन्द्रिय ज्ञान आदिक उत्पन्न करनेके तो ये सब काम पुरुषमें होने वाले किसी निमित्तकी अपेक्षा करके यह प्रकृति करती है या आत्माका निमित्त पाये बिना ही यह प्रकृति काम करती है ? ये दो विकल्प रखे गए। यदि कहो कि आत्माके किसी निमित्तकी अपेक्षा किए बिना ही यह प्रधान स्वतन्त्रतासे अपने बलसे सारे इन जालोंको, शरीर सम्पादनको, समस्त कार्योंको किया करता है तब फिर मुक्त आत्माओंमें भी शरीर सम्पादन कर दे। जब आत्माकी अपेक्षा बिना ये प्रकृति शरीर बनादे, भोग बनादे, इंद्रिय बनादे, ज्ञान बनादे तो अनपेक्ष प्रधान सर्वत्र कार्य करे, मुक्तोंके भी शरीर लगा दे।

उपेक्षा रखकर भी प्रकृतिका कार्य होना माननेपर मुक्तमें प्रकृति

कार्यत्वका प्रसङ्ग—यदि कहो कि प्रकृतिने अपेक्षा रखकर काम किया तो क्या विवेकानुपलम्भका अपेक्षा रखकर प्रधान कार्य करता है या अदृष्टकी अपेक्षा रखकर प्रधान तत्व (प्रकृति) कार्य करता है ? मतलब यह है कि जब विवेक नहीं पाया गया आत्मामें कि प्रकृति अलग तत्व है और आत्मा अलग तत्व है, तो प्रधानने शरीर जुटा दिया गया, ऐसी अपेक्षा रखकर प्रकृति शरीर जुटाती है या अदृष्टकी अपेक्षा रखकर प्रधानने शरीर जुटा दिया। जैसा अदृष्ट जिसके साथ लगा हुआ है उसे यह प्रकृति शरीर इंद्रिय, भोग, ज्ञान आदिक वैसा ही जुटाती है। यदि कहो कि विवेक की अनुपलब्धि होनेसे प्रकृति शरीरका सम्पादन करती है तो विवेककी अनुपलब्धि तो मुक्त जीवोंमें भी है। देखिए—जैसे भव्यत्वका अभाव सिद्ध जीवोंमें भी है और संसारके ठेकेदारोंमें भी है तो इसी प्रकार विवेकका अभाव विवेककी अनुत्पत्ति रूपसे है और मुक्त आत्मावोंमें विवेकोपलब्धिका अभाव विनाशरूपसे है, इसमें विवेकका उपालम्भ था पहिले। जब यह ज्ञानी योगी हुआ कुछ साधनामें हुआ तो इसकी विवेकोपलब्धि थी फिर मुक्त होनेपर कैवल्य हुआ, विवेकोपलब्धि नष्ट हुई। सो विवेककी अनुपलब्धि संसारी जीवोंमें है और मुक्त जीवोंमें भी विवेकानुपलम्भ है। फिर प्रकृति मुक्त जीवोंमें भी शरीर समादन करदे, यह आपत्ति आती है। यदि कहो कि अदृष्टकी अपेक्षा रखकर यह प्रकृति जीवोंको शरीर चिपकाया करती है तो फिर मुक्त आत्मावोंमें भी शरीर लगा देना चाहिए, क्योंकि प्रकृतिमें शक्तिरूप अदृष्ट भी व्यवस्थित है।

दुष्टतया विज्ञान होनेपर भी अचेतन प्रकृतिके कार्यके निरोधकी अशक्यता- अब इस बातपर विचार करते हैं जो यह कथा था कि इस पुरुषने जब यह जान लिया कि यह प्रकृति दुष्ट है तो दुष्टरूपसे जानी यह प्रकृति, इसके इतना बल नहीं होता कि पुरुषके पास फिरके। जैसे कोई दुष्टिनी कुष्टिनी स्त्री है, वह ऊपर से ठीक ठाक जचती थी और उसपर कोई पुरुष आसक्त हो गया था, उसके उस स्नेह में कुछ दिन रहनेके बाद जब उसे पता पड़ा कि यह तो अनेक अङ्गोंसे कुष्टिनी है, यह दुष्टिनी है, ठीक नहीं है, बुरी है। तो बुरी है, ऐसा जब जान लिया उस स्त्रीने कि हमारी इस बातको इस पुरुषने समझ लिया है तो फिर उस स्त्रीकी हिम्मत उस पुरुषके पास जानेके लिए नहीं पड़ती। इसी प्रकार इस प्रकृतिने जब आत्माको जान लिया कि यह दुष्ट है प्रधान, कर्म। तो जब जान लिया कि प्रकृति दुष्ट है तो ये प्रकृति, कर्म अब हिम्मत नहीं कर पाते उस आत्माके पास जानेके लिए, शरीर और भोग जोड़नेके लिए, क्योंकि इसने जान लिया कि मैं दुष्ट हूँ तो यह प्रकृति जरा शर्म वाली है तो उस पुरुषके पास नहीं जा सकती है। यह कहना भी तुम्हारा अयुक्त है, क्योंकि प्रकृति तो अचेतन मानी गयी, और अचेतनमें यह ज्ञान कैसे सम्भव हो जायगा कि मैं इस पुरुषके द्वारा दुष्टरूपसे जान ली गई हूँ। इस आत्माने मुझे बुरा जान लिया है कि यह दुष्ट है, इसकी प्रकृति खराब है। यह ज्ञान प्रकृतिमें सम्भव

नहीं है। तब ज्ञान उत्पन्न न हो सकनेसे यह प्रकृति सबके लिए समान है तब भी मुक्त जीवोंमें लगना चाहिए क्योंकि जान जाय कोई तो वह तो दब जायेगा। इसने समझ लिया कि इसकी प्रकृति ठीक नहीं, दुष्ट है तब फिर वह न जाएगी लेकिन प्रकृतिमें तो ज्ञान ही नहीं है।

प्रकृतिका चेतयिताके निमित्त उत्पाद और विनाशका भाव- प्रकृतिवादियोंने जो यह उदाहरण दिया था कि समयसारमें भी तो लिखा है कि "प्रकृति भी चेतनके लिए उत्पन्न होती है विनष्ट होती है।" सो उपालम्भ ठीक नहीं, क्योंकि इसी प्रकार यह भी तो लिखा है कि आत्मा भी प्रकृतिके लिए उत्पन्न होना और विनष्ट होता। तो यहाँ अर्थका अर्थ प्रयोजन नहीं है, किन्तु अर्थका अर्थ निमित्त है। निमित्त शब्दका और प्रयोजन शब्दका कुछ भाव एक समानसा है फिर भी अन्तर है जैसे कोई कहे ना, कि मैं तो इसके अर्थ मिला, मैं तो इसका निमित्त मिला तो अर्थ और निमित्तका कहीं कहीं करीब–करीब एकसा अर्थ है लेकिन इसमें भेद है। प्रयोजनका प्रयोग तो जानकार पुरुषोंमें होता है। जैसे अग्निने पानी गरम किया तो क्या यह कह सकेंगे कि अग्नि पानीके प्रयोजनके लिए जल रही है ऐसा कोई प्रयोग नहीं करता प्रयोजन शब्दका प्रयोग चेतनमें होता है और अग्निके निमित्तसे पानी गरम हुआ, ऐसा प्रयोग चलता है। तो आत्मा और प्रकृति [कर्म इन दोनोंका परस्पर] निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। यह बात दिखाई गई है कि प्रकृति आत्माका निमित्त पाकर उत्पन्न होती है, विनष्ट होती है और आत्मा प्रकृतिका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है याने नवीन–नवीन पर्यायोंमें आता है और विनष्ट होता है याने पूर्व विभावको विलीन करता है अथवा बरबाद होता है। तो यह कहना भी युक्त नहीं है कि "प्रकृतिने आत्माको भेद विज्ञान कराया और भेदविज्ञान करानेके बाद जब यह प्रकृति जान लेती है कि आत्मा का मैंने मोक्ष समझ लिया तो यह शांत हो जाती है, उसे शरीर सम्पादन नहीं करती, अतः प्रकृति और पुरुषके बीचमें अन्तर दिखा देनेका उपाय मोक्ष है यह बात घटित नहीं होती।

विवेकोपलम्भके पश्चात् भी सदेहस्थितिकी संभवता—फिर भी मान लो भेदविज्ञान हो गया और भेदविज्ञानकी पराकाष्ठा भी जिस जीवमें हो, सम्यग्दृष्टि जन हो, साधुजन हो, तो भेदविज्ञानकी पराकाष्ठा अपनी हो गयी फिर वह भी अभी शरीरके साथ रह रहा है। तो भेदविज्ञान मोक्षका कारण नहीं हुआ। भेदविज्ञान होने के बाद उसका आचरण होवे, भली प्रकार अवस्थित रह जाय कि किसी भी विभावकी तरङ्गमें न आये ऐसी अवस्था प्राप्त हो तब मोक्ष होता है। तो उसका अर्थ यह हुआ कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्रकी पूर्णतासे मोक्ष होता है। न कि भेदविज्ञानमात्रसे।

गुणोच्छेदकी मोक्षस्वरूपतापर विचार- यहाँ मोक्षस्वरूपके प्रकरणमें

सभी दार्शनिकोंकी बात रखी एक उस मोक्षस्वरूपको तो सबने चाहा, जो एक सङ्कटों से छुटकारा रूप है। मोक्षका सीधा अर्थ है सङ्कटोंसे छुटकारा पाना। तो यह तो सभी दार्शनिकोंको इष्ट है। सङ्कटोंसे छुटकारा पानेका नाम मोक्ष है पर उस मोक्षके स्वरूपमें और मोक्षके उपायोंमें जो उसकी चर्चायें हैं वे कोई तो मूलमें सत्यार्थकी निकट चर्चायें थीं और फिर अनेक दर्शनोंके शास्त्र जब रचे गए उत्तरोत्तर तो धीरे-धीरे फिर उनमें एकान्तकी पुट और बढ़ जानेसे फिर जरा विशेष गड़बड़ी होगई। मान लीजिए वैशेषिक मानता है कि आत्मामें ज्ञानादिक गुणोंका उच्छेद हो जाना इसका नाम मोक्ष है तो कौनसी बुरी बात कह दी? अब जो हमारे परिचित ज्ञान हैं, उनको ही ज्ञान जान जाय तब कोई भी विरोधकी बात नहीं है। जो क्षायोपशमिक ज्ञान है, विकल्परूप ज्ञान हैं उनका उच्छेद मोक्षमें हो ही जाता है तो निकटता थी कभी, लेकिन उस मंतव्यके शास्त्रमें बादके आदमियोंने जब उनके कानून बने, जब निबद्ध हो गए वे दर्शन तब अन्तर आगया। निबद्ध हुए बिना जिसकी यह बुद्धि उत्पन्न हुई होगी वे कुछ निकट थे।

आनन्दाभिव्यक्ति और विशुद्धज्ञानोत्पत्तिकी मोक्षस्वरूपताका विचार

जिसने माना कि मोक्षका स्वरूप आनन्द है और आनन्दगुणकी जो अभिव्यक्ति है उस का नाम मोक्ष है, आनन्दरूप आत्मा है इसमें कौनसे विरोधकी बात है। आत्मा आनन्दस्वरूप है ही और उस आनन्दकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है, लेकिन यह दर्शन निबद्ध होनेसे पहिले जिस किसी भी ऋषि संतके चित्तमें यह बात आयी थी वे निकट थे जब इनका निबंधन हुआ, तब एकान्त आया। आत्मा तो आनन्दमात्र है और वह अपरिणामी है, उसमें कोई तरङ्ग नहीं उसका कोई परिवर्तन नहीं, उसका कोई भोग नहीं, अनुभव नहीं, बस आनन्द स्वरूप है। स्वरूप भी अब देखिये—जिन दार्शनिकों ने माना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है उसमें कौनसा विरोध है? अशुद्धता मिट गई रागादिक दूर हो गए, अब मात्र ज्ञान ही ज्ञान रह गया वह मोक्ष है। निकटता थी, किन्तु जब प्रणयन हुआ तो उसमें युक्तियां दिखानी पड़ी और कुछ बनानी पड़ी तो विशुद्ध ज्ञानका स्वरूप यह बन बैठा कि प्रत्येक समयमें एक एक ज्ञान पदार्थ उत्पन्न होता रहता है। ज्ञानका आशय नहीं है कि उसका आधारभूत कोई एक आत्मा है। प्रत्येक समयमें होने वाला ज्ञान जुदा एक-एक पदार्थ है। जब इन ज्ञान सततियोंमें यह भ्रम रहता है कि मैं वो वही हूँ जो पहिले था तब इसे संसारमें रुलना पड़ता है। जब ज्ञान यह जान जाय कि मैं तो क्षणिक हूँ, एक समय वाला हूँ, मेरा तो यह स्वरूप है, पूर्वापर न कोई सम्बन्ध है न उसकी सत्ता है, तो ऐसा ज्ञान होने पर वह सततिका छेद कर देता है फिर आगे उसकी परम्परा समाप्त हो जाती है तो मोक्ष हुआ। यहां ज्ञानका आधारभूत आत्मतत्व नहीं माना गया, फिर मोक्षस्वरूप किसका बने।

आत्मैकत्वज्ञान और प्रकृतिपुरुषविवेकोपलम्भमें मोक्षकारणताकी

युक्ततापर विचार—अद्वैतवादका सिद्धान्त है कि आत्माके एकत्वका ज्ञान होनेसे परमात्वस्वरूपमें लय हो जानेका नाम मोक्ष है। इसकी समतामें जैनदर्शनने यह माना कि आत्माके एकत्वका याने कैवल्य स्वरूपका ज्ञान होनेसे निज कारण परमात्मामें जो लोनता होती है उसका नाम मोक्ष है, इसमें कौन सी विरुद्ध बात है? एकत्व विभक्त आत्माका तो उपदेश दिया ही जाता है। आत्मा यह एकत्व जब जाना गया पहिले तब तो निकट होंगे पर प्रणयनके बाद जब अपना सारा युक्तिसाधन बना लिया गया तो वह एकत्व सब विश्वमें केवल एक है और उसका ज्ञान होना मोक्षका उपाय है। यहां आत्माको सर्वैक मान लिया गया, तब वहाँ किसका मोक्ष कराना, किसका संसार होना ये सब बातें आ जाती हैं। प्रकृतिवादीने यह माना कि प्रकृति और पुरुषमें जब विवेक हो जाता है, भेदविज्ञान हो जाता है तब उसे मोक्ष मिलता है। तो भेदविज्ञान बिना किसीने जोक्ष पाया क्या? मोक्षके उपायमें मुमुक्षुको सर्वप्रथम द्रव्यकर्म और भावकर्म-आत्मा स्वरूप, चैतन्य इनमें भेद विज्ञन करना ही होता है लेकिन जहाँ प्रकृतिका ही स्वरूप सारे विश्वका आधारभूत कोई एक तत्त्व है जो त्रिगुणात्मक है आदिक समझा गया है वह उपादान निमित्त वाली विधियोंमें संगत नहीं बैठता है और पुरुषका भी जो स्वरूप बताया गया है, केवल चिन्मात्र ज्ञान भी वहाँ नही है, ज्ञान भी प्रकृति का धर्म है तब वहाँ बंध मोक्षकी व्यवस्था नहीं बन पाती है। और सब तरहसे विचार करनेपर यह व्यवस्था सिद्ध हुई कि आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है। जब जनादिसे ही विभावोंकी परिणति होनेके कारण परमें आकर्षण है, परमें दृष्टि उलझी है तो इससे यह जन्म मरणकी परम्परा चल रही है। जब भेदविज्ञान हो और परतत्त्वोंसे हटें, स्व में लगें तो इसकी रागादिक मलिनतायें दूर होंगी और इसके ज्ञानादिक गुणोंका पूर्ण विकास होगा, इसीका नाम मोक्ष है और यही आत्माकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था है।

नैयायिकाभिमत मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें वैशेषिकका कथन—अब यहाँ नैयायिक मोक्षका स्वरूप कहते हैं कि मुक्त अवस्थामें आत्मा अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है इसका नाम मोक्ष है। इसके प्रतिपक्षमें विशेषवादी कहते हैं कि यह तो इसका स्वरूप ही है किन्तु वह स्वरूप विशेषगुणसे रहित है। ज्ञानादिक गुणोंसे रहित अपने आत्मामें अवस्थान होता है, चिद्रूपमें अवस्थान होना घटित भी नही होता है, क्योंकि चिद्रूपता अनित्य है। चिद्रूपताके मायने बुद्धि। बुद्धि अनित्य होती है। बुद्धिका विनाश होता है इस कारण आत्मा चिद्रूपमें अवस्थित रह ही नही सकता मुक्त होनेपर यह भी क्योंकि जो बुद्धिइन्द्रिय आदिकके साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध रखना है, इन्द्रिय प्रकाश आदि सब सामग्री हो तो बुद्धि उत्पन्न होती है, न सामग्री हो तो बुद्धि उत्पन्न नही होती। इस प्रकार इन्द्रिय आदिक बाह्य साधनोंसे अन्वय व्यतिरेक रखने वाली बुद्धि नित्य कैसे मानी जा सकती है। तो बुद्धि कहो या चिद्रूपता कहो, दोनों एक ही बात हैं। तब अनित्य चिद्रूपमें अवस्थित एक तो हो नही सकता और ऐसी अनित्य बुद्धिमें अवस्थित हो भी तो उसे मोक्ष माना नहीं जा सकता।

आत्मासे चिद्रूपताकी भिन्नता व अभिन्नताके विकल्पोंमें विशेषवादी द्वारा यौगाभिमतका निराकरण— अब नैयायिक कहते हैं कि वह तो आत्मस्वरूप है, जो चेतन है, चिद्रूपता है वह आत्माका स्वरूप है। तो यह बतलावो कि वह आत्मासे भिन्न है कि अभिन्न। जो बुद्धि इन्द्रिय आदिक साधनोंसे हुई हो उसे भी मान लें तो यह बतलावो कि वह बुद्धि चिद्रूपता आत्मासे अभिन्न है या भिन्न है। यदि कहो कि आत्मासे अभिन्न है तो फिर यह पर्यायमात्र हुआ। नाम ही अलग रख दिया। पदार्थ तो एक रहा। चाहे आत्मा कहो चाहे बुद्धि। जब आत्मा और बुद्धि दोनों अभिन्न हो गए तब वहां कौन गुण रहा कौन गुणी रहा? वे तो एक ही रूप हो गए। जो आत्मा सो ही चिद्रूपता। और, ऐसी आत्माको नित्य माना ही है और उससे अभिन्न ऐसे उस चिद्रूपको भी तुमने नित्य माना है, उसमें बुद्धि ज्ञान नहीं आ सकता वह तो एक चित् है। यों समझिये कि कहनं मात्रको है। पर उसमें गुण आये, बुद्धि आये ऐसा आत्माका स्वरूप ही नहीं है। यदि वह चिद्रूपता आत्मासे अभिन्न है तो वह एक ही बात हो गई। अगर भिन्न है तो आत्मासे भिन्न होनेपर फिर चिद्रूपता आत्माकी क्या रही? आत्मा नित्य है। जो आत्माका स्वरूप हो सो नित्य होगा। बुद्धि तो अनित्य ही रही। और फिर भेद माननेपर संयोगादिकके साथ अनैकांतिक दोष होगा, संयोग आदिक भी नैयायिकोंने आत्मधर्म माना तो आत्मधर्म होनेपर भी नित्य नहीं है तो चिद्रूपता आत्माका धर्म भी मान लो ऐसे भी वह नित्य नहीं हो सकता।

गुण गुणीका तादात्म्य न बताकर विशेषवादी द्वारा यौगाभिमतका निराकरण - गुण गुणीका तादात्म्य सम्बन्ध नहीं हो सकता। गुण गुणी दोनों अलग-अलग सत् हैं विशेषवादमें। जैसे प्रसिद्ध है ना कि आत्मामें ज्ञान है तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। ज्ञान है सो आत्मा है। विशेषवाद यह नहीं मानता। आत्माकी जुदी सत्ता है और ज्ञानकी जुदी सत्ता है फिर गुणगुणीका समवाय सम्बन्ध होता है। द्रव्यका संयोग सम्बन्ध होता है तो ये सब व्यवस्थाएं सम्बन्धसे बनती हैं। किन्तु आत्मा गुणीका ज्ञान गुणसे तादात्म्य नहीं है इस कारण आत्मस्वरूपसमवस्थान नहीं बन सकता। सो बुद्धि आदिक विशेष गुणोंके उच्छेदका ही नाम मोक्ष है। यही तत्त्वज्ञान है। ऐसा सही ज्ञान उत्पन्न करें कि जहां सुख दुःख बुद्धि आदि गुण अवगुण ये सब नष्ट हो जायें, आत्मा केवल एक रह जाए उनका नाम मोक्ष है। विशेषवादियोंने ऐसा नैयायिकोंके मोक्षस्वरूपका निराकरण करते हुए अपना पक्ष रखा।

यौगाभिमत आत्मस्वरूपसमवस्थानरूप मोक्षस्वरूपकी युक्तता व अयुक्तता——अब उक्त चर्चाके समाधानमें कहते हैं कि यह जो कहा गया है कि स्वरूपमें, चैतन्यमात्रमें अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है। यह बात युक्त भी है अयुक्त भी है। युक्त तो इस प्रकार है कि मोक्ष कहते ही उसे हैं कि परतत्त्वोंसे, परभावोंसे उपाधियोंसे छुटकारा हो जाय, केवल अपने चैतन्यमात्र स्वरूपका अनुभवत रहे, चेतनामात्र

रहे, वह युक्त ही बात है और अयुक्त इस कारण है कि चैतन्यमात्रका जो यह अभिप्राय बनता है कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि कुछ न रहे, केवल एक चैतन्यमात्र रहे तो ऐसा चैतन्यमात्र कोई स्वरूप नहीं है। मोक्ष होनेपर अनन्त ज्ञानादिक स्वरूपमय जो कि चैतन्य वस्तु हैं उनमें अवस्थायें होती हैं और विशुद्ध ज्ञानपनेको मोक्षपनेका साधन कहा गया है तथा पूर्व विशुद्ध ज्ञानको मोक्षका साधन कहा गया है। कुछ भी सत् हो, सत्में द्रव्यत्वके ही कारण यह गुण है जो प्रतिसमय परिणमन करता ही रहेगा। ऐसी वस्तुकी कल्पना करना कि जहां परिणमन कुछ भी नही होता, यह तो ख्यालमात्र है और ऐसा ख्याल करनेमें इस दार्शनिककी कोई मायाचारी या बेईमानी आदिक नही है। उनके कथित उस स्वरूपको सावधानीसे सुनो। जो मुक्त अवस्थामें स्वरूप रहता है, सावधानीसे निरखें, चिन्तन करें तो चिन्तन करते-करते यह तो विद्वज्जनोंको विदित ही होता है कि वहाँ विकल्प विभाव तरङ्ग ये कुछ नहीं रहते हैं, तो जहाँ विकल्प विभाव तरङ्ग ये कुछ नहीं है तो क्या है ? एक सामान्य प्रतिभास। सो वहाँ यदि कुछ आये तो उससे प्रभुतामें लांछन आ जायगा, एक द्वैतकी बाधा आ जायगी। इसलिए यह ज्ञान भी नही है यों अभिमत बन गया। तब फिर वह किसरूप है ? वह तो चित्रूप है। जो चित है सो ही चित् है।

यौगाभिमत मोक्षस्वरूपकी युक्तता व अयुक्तताका अन्तर्दृष्टिसे विवरण

जैसे एक अध्यात्मयोगमें ज्ञानदृष्टि बनानेके लिए अन्तः दृष्टि बनानेके लिए यह कहा जाता है कि वह न रागयुक्त है न रागरहित है, वह तो एक चित् है इसी प्रकार सभी अशुद्ध शुद्ध पर्यायोंके बारेमें कहा जाता है वह न मिथ्यादृष्टि है न सम्यग्दृष्टि है। वह तो चित् है। तो जैसे स्वभावदृष्टि करानेके लिए, स्वभावका दृढ़तम परिज्ञान परिचय करानेके लिए, जैसे स्वभावके स्वरूपका वर्णन होता है ऐसा ही वर्णन सुनकर इस ही रूप चित्को सब दृष्टियोंसे मान लिया गया, तब यह भी मान लिया गया कि मोक्ष होनेपर ऐसा ही चित् रहता है। लेकिन, अध्यात्म योगियोंने इस स्वभावदृष्टि करते समय यह विरोध नहीं रखा कि मेरा कोई परिणमन नही है, हां उस समय प्रयोजन स्वभावदर्शनका था सो परिणमनोंकी उपेक्षा की, उनको न निरखा, उनको उस समय विकल्पोंमें न लिया, एक स्वभावमात्रको ही निरखा। यहां दार्शनिकने जो चैतन्यस्वरूप समवस्थानका नाम मोक्ष कहा है तो वहां चिद्रूपका अर्थ केवल वह चित् है जिसे कुछ स्वभावदृष्टिसे बताया जा सकता है। परन्तु वह स्वभाव तो एक लक्ष्यकी चीज है, स्वभाव ऐसा ही कोई स्वतन्त्र सत है सो बात नही। जो सत है उसका शाश्वत धर्म यह भी है कि वह परिणमनशील भी है। तो उस चित्स्वरूपका परिणमन है मोक्ष। लेकिन वह परिणमन ऐसा सम है कि उन परिणमनोंको निरखकर भी परिणमन समझमें नही आता। लोग परिणमन तब समझ पाते हैं जब कुछसे कुछ बन जाय। कुछ परिवर्तन समझमें आये। तो सदृश और सम जो परिणतियाँ हुई हैं उन्हें निरखकर लोग परिणमन नहीं समझ सके और उस स्वभावरूपको सुनकर तो परिणमनकी

कोई बात हो नही है। इस वातावरणमें एक कूटस्थ अपरिणामी चिद्रूपका ख्याल बनाया गया है। तो बुद्धिकृतदोष नही किया दार्शनिकने परन्तु सावधानीकृतदोष तो है। उस दृष्टिसे चूक गए जो एक वस्तुके स्वरूपको बताने वाले हैं। तो चिद्रूप अवस्था होनेका नाम जो मोक्ष कहा गया है वह कूटस्थ अपरिणामीरूपसे माननेपर तो अयुक्त है और अनन्तज्ञानादिक चतुष्टय स्वरूपमें वर्तते रहनेरूपसे चैतन्यमात्रमें अवस्थान करनेका नाम मोक्ष है यह युक्त है।

आत्मसर्वज्ञत्वके प्रतिपक्षमें प्रकृतिवादका मंतव्य अनन्त ज्ञान, दर्शन, शक्ति, आनन्द ये आत्माके स्वरूप नही हैं। ऐसा यदि हो तो सर्वज्ञपनेका विरोध हो सकता है। क्योंकि आत्मामें ज्ञान तो रहा नही। स्वरूप समवस्थान ही आत्माका मोक्ष हो गया फिर सर्वज्ञ कौन रहा ? यह बात सुनकर प्रकृतिवादी कहता है कि ठीक है सर्वज्ञ आत्मा नहीं हो सकता है, सर्वज्ञ तो प्रकृति हुआ करती है। आत्मा तो चिद् रूप है, ज्ञानादिक तो प्रकृतिके धर्म हैं। तो सर्वज्ञ प्रकृति ही बनती है, आत्मा सर्वज्ञ नही है यह ठीक है इसमें क्या आपत्ति है ? समाधानमें कहते हैं कि नही, प्रकृति अचेतन है। अचेतनसे यदि सर्वज्ञ बनने लगे तो आकाश क्यों नही सर्वज्ञ बन जाता ? आकाश अचेतन है, अचेतन सर्वज्ञ हो तो आकाश भी सर्वज्ञ बनने लगे। यदि कहो कि ज्ञानादिक भी तो अचेतन हैं इसलिए ज्ञान प्रकृतिका स्वभाव बन गया। प्रकृतिका धर्म चूंकि प्रकृति अचेतन है इसलिये अचेतन ही होना चाहिये। यही तो आपने कहा है कि अचेतन प्रकृतिसे जो भी बात बनेगी वह सब अचेतन बनेगी। तो ज्ञान भी अचेतन है, प्रकृतिसे ज्ञान हुआ, पूर्ण ज्ञान हुआ, लो प्रकृति सर्वज्ञ होगयी आत्मा तो चैतन्यमात्र है।

ज्ञानको अचेतन माननेपर आपत्तियाँ -- अब प्रकृतिके सर्वज्ञत्वकी शङ्काका समाधान करते हैं—ज्ञान अचेतन है यह भी नही कह सकते, क्योंकि वह अचेतन है, यह कैसे सिद्ध करोगे ? यदि कहो कि अनुमानसे सिद्ध करेंगे ज्ञानादिक अचेतन हुआ करते हैं क्योंकि ये उत्पन्न होते हैं। जैसे घटपट आदिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं तो अचेतन हैं ऐसे ही ज्ञानादिक भी उत्पन्न होते हैं तो ये भी अचेतन हुए। आत्मा हो एक मात्र चेतन है, क्योंकि वह कूटस्थ अपरिणामी है। तो ये ज्ञानादिक भी अचेतन सिद्ध होते हैं। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नही है, तुम्हारा हेतु सदोष है अनेकान्तिक दोष सहित है। जो-जो उत्पन्न हों वे वे सब अचेतन हो जायें तो अनुभव भी तो उत्पन्न होता है लेकिन अनुभवको तो तुमने अचेतन नही माना। ज्ञान और अनुभव ये विशेषवादमें जुदे-जुदे तत्त्व हैं। अनुभवको तो चेतन कहा और ज्ञानको अचेतन कहा है। उन्होंने चैतन्य और ज्ञानमें क्या अन्तर डाला है इसको कुछ समझना है तो इस तरह समझ लीजिये कि जैसे ज्ञान और दर्शन माने गए हैं तो ज्ञानका काम तो जानना है, पर दर्शनका काम जानना नही है, दर्शन अनुभवात्मक होता है। यह अनुभव ज्ञानानुभव जैसा नही कहा जा रहा। यद्यपि ज्ञान और दर्शन दोनों अनुभवात्मक हैं,

किन्तु जो विकल्प सहित ज्ञान है ऐसे ही ज्ञानका काम तो जानना है, वह तो विशेष-वादमें अचेतन है, ज्ञानमें चेतनकी चेत नही है पर अनुभव चेतन है। तो जो जो उत्पन्न हों वे वे सब अचेतन होते हैं ऐसा अनुमान बनानेमें अनुभव भी अचेतन बन बैठेगा। वह चेतन होनेपर भी उत्पन्न हुआ करता है, ऐसा माना है। अनुभव उत्पन्न हुआ करता है यह बात असिद्ध भी नही है क्योंकि जो जो परापेक्ष होते हैं वे वे उत्पन्न हुआ करते हैं ऐसा नियम है। जैसे बुद्धिको परापेक्ष माना है ना, कि इन्द्रिय प्रकाश आदिक अनेक साधनोंकी अपेक्षा करके बुद्धि उत्पन्न होती है तो परापेक्ष होनेके कारण जैसे बुद्धिको उत्पन्न माना जाता है इसी प्रकार अनुभव भी परापेक्ष है। अनुभव कैसे होता है ? अनुभव कहते हैं आत्मा के द्वारा चेतनेको। आत्मा चेते उसका नाम अनुभव है, पर आत्मा अनुभवसे कब चेतता है ? जब ज्ञान किसी विषयको निश्चित करदे और ज्ञानके द्वारा निश्चित किया गया अर्थ जब इस आत्माके समक्ष आता है तो बुद्धि द्वारा निश्चित किये गए अर्थको यह आत्मा चेतता है अर्थात् अनुभवता है। तो आत्मा जो यह अनुभव बना वह ज्ञाननिर्णयकी अपेक्षा करके बना तो परापेक्ष हुआ। जो जो परकी अपेक्षा करें वे सब उत्पत्तिमान हैं। जो जो उत्पत्तिमान हैं वे वे तुमने अचेतन माने हैं सो अनुभवको भी अचेतन माननेका प्रसङ्ग आ जायगा।

ज्ञानकी चैतन्यरूपता ज्ञानको अचेतन बतानेवाले अनुमानको बाँधने वाला यह अनुमान है कि ज्ञानादिक चेतन हैं क्योंकि ये स्वसम्वेदन प्रत्यक्षरूप है स्वसम्वेदनसे जाना जाता है कि यह ज्ञान क्या है। तो जो जो स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे जाने गए वे सब चेतन होते हैं, यदि कहो कि ज्ञान तो अचेतन ही है पर चेतनका सम्बन्ध मिलनेसे ज्ञान में चेतनताकी प्रसिद्धि हो गयी है, लोग इस ज्ञानको चेतन कहने लगे हैं, क्योंकि तो ज्ञानका चेतनसे सम्बन्ध होता यह भी कहना मात्र है, क्योंकि ज्ञानका संसर्ग चेतनसे हो जानेपर इस कारण ज्ञानमें चेतनता आयी तो शरीरका संसर्ग इस चेतनसे है। तो इसको चेतन क्यों नहीं कहा ? जब चेतनका सम्बन्ध होनेसे ज्ञान जानने लगेगा तो चेतनका सम्बन्ध पाकर शरीर भी जानने लगे, ज्ञान करने लगे। यदि कहो कि वह जो संसर्ग है ज्ञानका वह अनूठा है वह शरीरादिकमें नही पाया जाता है, कि वह अनूठापन क्या है सिवाय इसके कि आत्माके साथ तादात्म्य है। जो भिन्न भिन्न चीज है उसका एकके साथ दूसरेका अनूठापन क्या ? यदि है ऐसा कोई खास सम्बन्ध तो तादात्म्य सम्बन्ध ही है। ज्ञानका आत्माके साथ कथंचित् तादात्म्यसम्बन्ध है। जो ज्ञानस्वभाव है उसका तादात्म्य है पर ज्ञानका जो परिणमन है उसे निरखकर भिन्न माना जा रहा है और उसका उच्छेद माना जा रहा है वे सब ज्ञान परिणमन जिस काल आत्मामें होते हैं उस काल आत्मामें तन्मय है। तो कथंचित् तादात्म्यके सिवाय और वह संसर्ग क्या कहला सकता है।

ज्ञानकी आत्मस्वभावरूपता—यदि यह कहो कि वह अदृष्टकृत है, ज्ञान

जिसका सम्बन्ध आत्मासे हुआ यह अदृष्टके द्वारा हुआ तो कहते कि अदृष्टकृत तो शरीर भी है। जैसे अदृष्टकृत ज्ञान है सो ज्ञानका सम्बन्ध चेतनसे हो गया ऐसे ही अदृष्टकृत तो शरीर भी है। उसका भी सम्बन्ध चेतनमें मानलो। फिर उस चेतनके सम्बन्धसे शरीरमें बोध किया जाना चाहिये। इससे ज्ञानादिक अचेतन नहीं हैं वे सब स्वसम्वेद्य हैं। जैसे अपने अपने अनुभव अपने अपने द्वारा जाननेमें आते है तो वे चेतन हैं इसी प्रकारसे यह ज्ञान भी चूंकि स्वसम्वेद्य है इस कारण चेतन हैं। तो ज्ञान चेतन है और आत्माका स्वभाव है क्योंकि चेतन है। जैसे अनुभव चेतनात्मक है तो आत्मा का स्वभाव माना गया है इसी प्रकार ज्ञान भी चेतनात्मक है इस कारण आत्माका स्वभाव है। और जैसे ज्ञान आत्माका स्वभाव है ऐसे ही सुख भी आनन्द भी आत्माका स्वभाव है। तो जैसे ज्ञानका पूर्ण विकास मोक्ष अवस्थामें होता वैसे ही आनन्दका भी पूर्ण विकास मोक्ष अवस्थामें होता है। जब मोक्ष नाम है ज्ञानानन्दके चरण पूर्ण विकासक तो ज्ञान अथवा आनन्द आत्माका स्वभाव न हो तो मोक्षमें ज्ञान और आनन्द की अभि व्यक्ति ही नहीं हो सकती है। जैसे दुःख आत्माका स्वभाव नहीं है तो मोक्षमें दुःखकी व्यक्ति तो नहीं है। रागादिक आत्माके स्वभाव नहीं तो वे मोक्षमें तो नहीं रहते इसी तरह ज्ञान और आनन्द भी मोक्षके स्वभाव नहीं होते, आत्माके स्वभाव न होते तो उनका प्रकट पना मोक्षमें भी नहीं हो सकता था।

मोक्षकी अनन्तानन्दात्मकता –यह निःसन्देह मानना चाहिये कि मोक्ष आनन्दात्मक है क्योंकि चेतनात्मक होनेपर यह समस्त दुःखोंसे रहित रहा करता है, यह जो हेतु दिया गया है उसमें एक नियम और साथ जुड़ा हुआ है। चेतन होकर दुःख रहित है इसलिए मोक्ष सुखस्वरूप है। अन्यथा अर्थात् चेतनात्मक होनेपर यह न कहते तो ये घट,पट, खम्भा आदिक पुद्गल पदार्थ इनमें भी हेतु घट जाता, ये भी दुःखरहित हैं इन्हें कहाँ दुःख है इसलिए कहा कि चेतनात्मक होकर दुःख रहित है। केवल इतना ही कहते कि चेतन होनेसे मोक्ष सुख स्वरूप है। तो उसकी तो यह चर्चा ही चल रही थी। इस आत्माको ये चेतन मान ही रहे थे। विशेषवादी भी चेतन मान रहे हैं। नैयायिक भी चेतन मानते हैं। सांख्य भी चेतन मानते हैं पर उस चेतनमात्रसे सुख स्वरूपकी सिद्धि तो नहीं मान रहे हैं इसलिए इसमें दोनों बातें सोची गई हैं। जो समस्त सकल विकल्प संकोचकर ध्यान अवस्थामें आये हैं ऐसे योगीजन भी दुःख रहित हैं, वे भी आनन्दस्वरूप होते हैं यह भी प्रतीतिसिद्ध हो रहा है तो मोक्षभी चेतन्यात्मक है, दुःखोंसे रहित है अतएव सुखस्वरूप है। जो जो चेतन हैं, दुःखरहित हैं वे अनन्दमय ही हुआ करते हैं, साथ ही वे वह आनन्द अनन्त हैं ज्ञान भी अनन्त है क्योंकि आत्मा एक स्वभाव होकर फिर आवरण रहित है। जो जो तत्त्व आत्मामें स्वभाव होकर निरावरण हुआ करते हैं वे सब असीम विकसित होते हैं। जैसे ज्ञान आत्माका स्वभाव है और ज्ञानावरण नष्ट हो गया तो पूर्ण ज्ञान प्रकट होगा ही, इसी प्रकार आनन्द स्वभाव है और उसके बाधक हैं मोहनीय आदिक कर्म जब ये मोहनीय आदिक कर्म नष्ट

होते हैं तो वहां सुख प्रकट होता ही है । तो मोक्ष अवस्थामें सुख स्वरूपना है, न कि वह आनन्द रहित है और ज्ञानरहित है । वहाँ प्रतिबन्ध नहीं रहा यह बात सिद्ध ही है मोहनीय आदिककर्म अब मोक्षमें नही रहते हैं। इससे वह बात मानना चाहिये कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द अनन्त शक्ति इस चतुष्टय स्वरूपका लाभ होनेका नाम मोक्ष है, ऐसे मोक्षके लिए जीवोंको उत्सुकता जगती है।

मोक्षकी और सकल प्रत्यक्षज्ञानकी निरावरणरूपता—यहां जीव बन्धन अनुभव कर रहे हैं। बन्धन बड़ा विचित्र है। कोई लोग समझते हैं कि हम बन्धनमें नहीं हैं पर बन्धन उनका चल रहा है। जैसे देशवासी लोग जब आजाद हुए तो आगे को यह अनुभव करने लगे कि हम तो स्वतंत्र हो गए, पर कहाँ स्वतन्त्र हैं ? न जाने कितनी–कितनी तरहकी चिन्तायें लदी हुई हैं, एक बड़ा बन्धनसा रात दिन अनुभव किया करते हैं। बहुतसे धनिक लोग जिनके पास सभी प्रकारके आरामके साधन हैं, ब्याजसे किरायेसे व अन्य साधनोंसे बहुत बहुत आय होती रहती है, तो वे सोचते हैं कि हम तो बिल्कुल स्वतन्त्र हैं, किसीके आधीन नहीं हैं पर ऐसा सोचना उनका मिथ्या है, रात दिन भोगविषयोंकी अनेक प्रकारकी आशायें किया करते हैं यह उनका बन्धन ही तो है। जब तक जीवके आशा लगी है तब तक बन्धन है । तो बन्धनसे छूटनेका नाम मोक्ष है। इसके लिये हमें यहीं कहीं बैठे हुएमें, सामायिकमें अथवा किसी भी स्थितिमें रहते हुए यह अभ्यास करना होगा कि मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। मुझमें अन्य कोई उपाधि स्वरूप रूप नही पड़ा है। मैं सबसे विविक्त केवल अपने ज्ञानानन्दस्वरूप मात्र हूँ, ऐसा स्वभावका चिन्तन करनेका, उसे अपनानेका अभ्यास करना होगा और यह निज ज्ञानानन्दस्वरूपके चिन्तनका, दर्शनका अभ्यास करना होगा। ऐसा अभ्यास तत्काल भी शान्ति प्रदान करता है और इसकी धारणा इसका संस्कार उत्तरोत्तर बहुत समय तक शान्तिका कारण है और बढ़कर सदाके लिए शान्तिरूपका कारण बन जाता है। इससे हम इस अभ्यासको करें पर्याय बुद्धिको हटायें। इस देह, आकार, नाम आदिकको ये मैं नही हूं, ऐसा बारंबार भाव बनानेका अभ्यास करें तो इस भावनाके प्रसादसे ऐसा प्रकाश होगा, ऐसा अनुभव होगा कि यह इच्छा नष्ट हो जायगी। बस यही मोक्षमार्ग है। उसका उपाय यह रत्नत्रय है। तो इससे आत्म-विश्वास, आत्मज्ञान और आत्माके उस ही प्रकार ज्ञातारूप रहनेका आचरण ये जब पूर्ण हो जाते हैं तब वहाँ मोक्ष होता है, जहां ज्ञान, दर्शन शक्ति, आनन्द पूर्ण प्रकट होते हैं, इसीका नाम मोक्ष है। इसमें ज्ञान निरावरण रहता है और उस ज्ञानको सकलप्रत्यक्षज्ञान कहते हैं।

स्त्रीके मोक्षाविकलहेतुत्वकी असिद्धि – अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यह तो ठीक है कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्द आनन्द स्वरूपके लाभ होनेका नाम वोक्ष है। किन्तु वह पुरुषके ही होता है यह बात अयुक्त है। यह

श्वेतपट कह रहे हैं, क्योंकि उनके सिद्धान्तसे मोक्ष जो है वह स्त्रियोंके भी हुआ करता है, इसमें वे अनुमान देते हैं कि स्त्रियोंको मोक्ष होता है। क्योंकि सम्पूर्ण कारण मिलजाने से जैसे पुरुषोंका मोक्ष होता है इसी प्रकार स्त्रियोंको भी जब समस्त कारण मिल जाते हैं तो उनका मोक्ष निश्चित है। यह हेतु असिद्ध नहीं है अर्थात् स्त्रियोंको समस्त कारण मिल जाते हैं यह बात सही है। अब इस शंकाका समाधान करते हैं कि यह कहना युक्त नहीं है कि स्त्रियोंको भी मोक्ष होता है क्योंकि स्त्रियोंके मोक्ष हेतुभूत अविकल कारणत्व असिद्ध है। ज्ञानादिक परम प्रकर्ष जो मोक्षके कारणभूत हैं अर्थात् ज्ञान अधिक होना प्रकृष्ट होना उत्कृष्ट होना, चारित्र उत्कृष्ट होना यह बात स्त्रियोंमें सम्भव नहीं है क्योंकि परम प्रकर्षताकी बात है। जैसे जो जो चीजें परम प्रकर्षताको लिए हुए होती हैं वे स्त्रियोंमें नहीं पायी जा सकती। जैसे ७ वीं पृथ्वीमें नरकमें जानेका कारणभूत पापप्रकर्ष स्त्रियोंमें नहीं हो सकता। सप्तम नरकमें स्त्री मरकर नहीं जाती पुरुष हो जा सकते हैं, क्योंकि वह परम प्रकर्षता वाली बात है, तो इसी प्रकार ज्ञान और चारित्र कहीं परम प्रकर्ष प्राप्त होता है जब मोक्ष होता है तो परम प्रकर्ष रूप होने वाले ज्ञान और चारित्र ये स्त्री जनोंमें नहीं पाये जा सकते।

स्त्रीवेदके भावप्रकर्षताका अभाव—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यदि स्त्रियोंमें ७ वें नरकके जानेका कारणभूत पापोंकी प्रकर्षता नहीं पायी जाती है तो न पायी जाय उससे मोक्षके कारणभूत ज्ञान चारित्रकी परम प्रकर्षता न होनेमें क्या आया अर्थात् यदि पाप उत्कृष्ट स्त्रियोंसे नहीं बनता तो मोक्षका कारणभूत भी ज्ञान चारित्र उत्कृष्ट स्त्रियोंमें नहीं बनता। इसका क्या सम्बन्ध, क्योंकि कार्यके साथ कारणका अविनाभाव होता है। व्याप्यके साथ व्यापकका अविनाभाव होता है। कोई नरक नहीं जा सकता इसलिए मोक्ष भी नहीं जा सकता। इसका क्या सम्बन्ध है, इसमें अन्वयव्यतिरेककी कौन सी बात है। यदि किसी अन्य बातके अभावमें अन्य बातका अभाव मान लिया जाय तो इसमें तो बड़ी आपत्ति आयगी। कोई कहे कि यहाँ घोड़ा नहीं है इसलिए तीन लोक भी नहीं हैं। तो यों अटपट कुछ भी कहा जा सकता। जैसे कि कह दिया कि स्त्रियोंके पापकी प्रकर्षता नहीं है तो मोक्षके कारणभूत ज्ञान चारित्रकी प्रकर्षता नहीं है। कोई कह बैठेगा कि यहाँ हमारा लड़का नहीं है तो सारी दुनिया नहीं है, यों अटपट जो चाहे कह सकते हैं, इसपर उत्तर देते हैं कि भाई ऐसा नियम है कि जिस वेदके मोक्षका कारणभूत परम प्रकर्ष होता है उस ही वेदके सप्तम नरकमें जानेके कारण पापोंका भी परमप्रकर्ष होता है। जैसे पुरुष वेदकी बात पुरुषवेदमें मोक्षके हेतु उत्कृष्ट पाये जा सकते हैं। तो पुरुषवेदमें ही सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत पाप भी उत्कृष्ट हो सकता है। यहाँ चरमशरीरी पुरुषोंको दोष नहीं दिया जा सकता कि भाई चरमशरीरी जो पुरुष हैं जिनको उसी भवसे मोक्ष जाना है वे मोक्षमें जानेके भावोंका प्रकर्ष तो कर लेंगे, पर सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत उत्कृष्ट पाप नहीं कर सकते हैं। यह दोष यों नहीं है कि हम तो पुरुष सामान्यकी बात कह रहे हैं। पुरुषवेद वालेके

ऐसी योग्यता है कि उसके भाव बढ़े तो वे मोक्ष भी जा सकते हैं और भाव गिरे तो वे ७ वें नरकमें भी जा सकते हैं। विपरीत नियम सम्भव नही है कि जो ७ वें नरकमें जा सकता है और वह मोक्ष भी जा सकता है, ऐसा उल्टा नियम तो लागू नही होता, क्योंकि सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत उत्कृष्ट पाप नपुंसक वेदमें भी होते हैं पर नपुंसक वेदसे भी अर्थात् नपुंसक लोग भी मोक्षमें नही जा सकते। मोक्ष तो केवल पुरुषोंके ही माना गया है, इसलिए इस ओरसे नियम लगाना है कि जिस वेदमें मोक्षके उत्कृष्ट कारण सम्भव है। उस वेदवालेके सप्तम नरकमें जानेके कारण भी हैं। जो सप्तम नरक जा सके वह मोक्ष जा सके यह नहीं कहा जा रहा और जो सप्तम नरक नहीं जा सकता जिस वेदसे उस वेदसे मोक्ष तो सम्भव ही नहीं है। इससे स्त्री वेदसे भी यदि परम प्रकर्ष मोक्षका कारण बन जाय अर्थात् ज्ञान चारित्र उत्कृष्ट हो जाय तो यह मानना पड़ेगा कि वह सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत उत्कृष्ट पापको भी करने लगेगा।

पर्यायोंकी विभिन्न योग्यतायें—संसारमें अनेक प्रकारके भव हैं। उन भवों में अपनी जुदी-जुदी योग्यता है। पशुपक्षी पर्यायमें कोई आया हो तो वह तो मोक्षका साधन नही बना सकता। मनुष्य भव पाकर भी मनुष्य भवमें स्त्री देहमें इस प्रकारके कोमल शरीर और पुरुषमें असम्भव विभागोंकी योग्यता वाला आत्मा है कि उसके मुक्तिका साधन सम्भव नही है। तो जैसे स्त्रीवेदमें मोक्षके कारण उत्कृष्ट नहीं बन सकते, लेकिन उनका हेतु यह नही है, योग्यता ही इन दोनों वेदोंमें ऐसी है कि उनके भाव इतना अन्दरमें मलिनताको लिए हुए हैं कि बहुत कुछ धोनेपर भी, उज्वल होने पर भी उतनी उतनी स्वच्छता नही उत्पन्न हो पाती कि मोक्षका उत्कृष्ट साधन उनके बन सके। सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत पापोंकी उच्चता नपुंसकमें नही है, यह भी नहीं कह सकते। ये दोनों ऐसी योग्यता वाले हैं कि इनमें मोक्षहेतु पूर्ण नहीं आ सकता है अथवा जो युक्त अनुमान बनाया गया है कि जहां सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत पापोंकी उच्चता सम्भव नहीं है उस अनुमानमें इस हेतुसे मोक्षकी परम प्रकर्षताका स्त्रीमें निषेध नही किया जा रहा बल्कि परम प्रकर्षत्वके नातेसे दृष्टान्तमें साध्यकी व्याप्ति की जा रही है। इसमें कहीं दोष नही आता।

स्त्रियोंमें मायाचारकी परमप्रकर्षता नहीं किन्तु बहुलता—यदि कहो कि यह कहना तो गलत है कि स्त्रियोंमें किसी भी बातकी उत्कृष्टता नहीं हो सकती, उनमें मायाचारकी तो अति उत्कृष्टता है। इतनी उत्कृष्टता न पुरुषवेदमें सम्भव है न नपुंसकवेदमें। उनके मनमें कुछ, वचनमें कुछ और कायकी चेष्टायें कुछ ये उत्कृष्टतासे पायी जाती है। उत्तर देते हैं कि यह भी कथन ठीक नही। आगममें जो मायाचारकी बात बताई गई हैं स्त्रीजनोंमें, उसका कारण यह है कि मायाचार बहुलता से होता है। उत्कृष्टताकी बात नही है। अनेक लोगोंमें अनेक प्रकारके मायाचार

चलते है पर वे मायाचारमें उत्कृष्टता पा लें यह बात आगममें नही कही गयी। वैसे अनेक कथन ऐसे हैं कि उत्कृष्ट मायाचार तो पुरुषोंने किया। जैसे इतने बड़े कठिन प्रसङ्गमें जब कि रावणने यह प्रण कर लिया था कि मैं दशरथ और जनकका शिर ही उड़ा दूंगा ताकि न राम–सीता उत्पन्न होंगे न मेरा (रावण) का मरण होगा। यह बात जब दशरथ और जनकके मंत्रियोंने सुनां तो उन्होंने इतना प्रबन्ध किया कि दशरथ और जनकको गुप्त कर दिया और ठीक उन जैसी ही सही मूर्ति लाखकी बनवा कर रख दी और लोगोंका आवागमन वर्जित कर दिया विभीषणने भाईके मोहमें आकर उन दोनोंका कतल कर दिया और समुद्रमें फेंक दिया। पर वे तो कृत्रिम अचेतन लाखकी मूर्ति थी। यद्यपि यह मायाचार बुरे आशयका न था, तो भी यह देखिये, ऐसे ऐसे बड़े बड़े ऊँचे ऊँचे मायाचारी लोग हो गए, तो मायाचारकी उत्कृष्टता स्त्रियों में होती है जहाँ यह भी कहा गया, वहाँ बहुत प्रकारके मायाचार स्त्रीजनोंमें होते हैं यह बताया गया है अन्यथा पुरुषों की तरह त्रिस्योंके भी सप्तम नरकमें गमनका प्रसङ्ग आ गया अथवा जो हेतु दिया गया है उप हेतुमें इतना और बढ़ा दीजिये कि मायाके परम प्रकर्षके अतिरिक्त अन्य परम प्रकर्षता स्त्रियोंमें सम्भव नही है। इस तरहका विशेषण लगाकर यदि यह हेतु बनाया जाय तो दोष नही है। कषायकी उत्कृष्टता पुरुषोंमें सम्भव है। भले ही बहुत जल्दी समझमें ऐसा आता कि क्रोध मान, माया, लोभ आदिक कषायें स्त्रियोंमें अधिक हैं पर उन स्त्रियोंसे भी अधिक कषायें पुरुषोंमें सम्भव हैं। जितनी उत्कृष्टतासे इन कषायोंके काम पुरुष कर सकते उतनी ही उत्कृष्टता के साथ स्त्रीजन नही कर सकती हैं। बहुलताकी बात अवश्य पायी जाती है। इससे ज्ञानादिकका परम प्रकर्ष जो कि मोक्षका कारण है वह स्त्रीवेदमें सम्भव नहीं है। इस कारण तुम्हारा यह हेतु असिद्ध है कि स्त्रीवेदसे मोक्ष होता है क्योंकि समस्त कारण इकट्ठे हो जाते हैं। ज्ञानादिक जिस प्रकार पुरुषवेदमें उत्कृष्टताको लिए हुए प्रमाणसे सिद्ध होता है उस प्रकारकी उत्कृष्टताको लिए हुए ज्ञानादिक स्त्रीवेदियोंमें सम्भव नही होते अर्थात् यदि स्त्रीवेदमें ज्ञानादिक प्रकर्षरूपसे आ जायें तो फिर परम प्रकर्षता नपुंसकोंमें भी उस प्रकारसे आ जाय और ऐसा होनेपर फिर नपुंसकोंके भी मोक्षका प्रसङ्ग होगा।

स्त्रियोंमें मोक्षहेतुभूत संचयका अभाव— संयम जो मोक्षका हेतुभूत है वह स्त्रियोंमें असम्भव है। स्त्रियोंका सयम मोक्षका कारणभूत नही होता क्योंकि उनके संयम ऋद्धिविशेषका भी कारण नही बनता। मोक्षकी बात तो दूर रहो, ६४ ऋद्धियोंमें जो विशेष ऋद्धि हैं उनकी भी स्त्रीजनोंमें सम्भावना नही है। तब फिर केवलज्ञान जैसी उत्कृष्ट समृद्धि की पात्रता उन स्त्रीजनोंमें कैसे हो ? जबकि संयम सांसारिक लब्धियोंका कारण नही बन सकता वहां फिर समस्त सङ्कटोंके दूर होजाने के स्वरूप मोक्षरूपी उत्कृष्ट लब्धि कैसे सम्भव है। स्त्रीजनोंमें मोक्षके हेतुभूत कारणों का संयम नही माना गया है। तो ये सब बातें इस बातको प्रसिद्ध करती हैं कि ऐसा

उत्कृष्ट संयम स्त्रियोंके सम्भव नही जैसे कि पुरुष जनोंके सम्भव है। समस्त ग्रन्थोंका त्याग कर दें, लज्जा आदिक सब प्रकारके विभावोंका भी परिहार करदें ऐसी बात स्त्री जनोंमें सम्भव नही है। इसी कारण जो उत्कृष्ट निर्विकल्प समाधि है, शुक्लध्यान है, वह शुक्ल ध्यान स्त्रीजनोंमें सम्भव नही है। इस बातको सुनकर पुरुष जन तो यह शिक्षा ले सकते हैं कि जितना उत्कृष्ट भव पाया है और कैसी निरोगता पाई है या अनेक किस्मकी ऐसी व्याधियां जो पुरुषोंमें असम्भव हैं, स्त्रियोंमें ही सम्भव हैं वे व्याधियाँ नही हैं। तो ऐसी स्थितिको पाकर पुरुष जनोंको आवश्यक है कि वे धर्मसाधन में अपनेको अधिक जुटायें और स्त्रीजन यह शिक्षा ले सकते हैं कि हमको अभी अपने आत्माकी स्वच्छताकी तैयारी करनेका काम बहुत पड़ा हुआ है हम बहुत कुछ निम्न दशाओंको तो पार कर चुके पर अब भी बहुतसी बातें मोक्ष मार्गके लिये करनेको पड़ी हुई हैं। इनका अधिक ध्यान देना है, अधिक स्वच्छता उत्पन्न करनेका यत्न करना है।

स्त्रियोंमें मोक्षहेतुभूत उत्कृष्ट संहननका अभाव इस प्रसङ्गमें यह कहा जा रहा है कि मोक्ष स्त्रीशरीरसे सम्भव नही है, पुरुष शरीरसे सम्भव है। तो इसमें इस कारणसे परस्पर विवाद सम्भव नही है कि आजके समयमें न पुरुष जनोंका मोक्ष है और न स्त्री जनोंका मोक्ष है इसका कारण यह है कि वह संहनन ही नही है। देखिये! ध्यानकी निर्वचन स्थितिके लिए उत्कृष्ट संहननको भी आवश्यकता है। यद्यपि संहनन हममें नही है, शरीरकी बात शरीरमें है, आत्माकी बात आत्मामें है, लेकिन यहां प्रसिद्ध निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धको कौन मना कर सकता है? वस्तुस्वरूपकी बात यह है और जीव अजीवकी बात तो प्रकट ही है कि जीवमें अजीव नही। मगर जीव जीवोंमें भी एक दूसरे जीवके कुछ परिणमनको कर सकने वाला नही है। इतना ही नही, एक जीव तो दूसरे जीवके किसी भी परिणमनके लिए निमित्त भी नही बनता। जीवके कार्योंके लिए शुभ हों, अशुभ हों, उनके लिए अजीव निमित्त बन जाते हैं मगर जो जीवपदार्थ हैं, जीवद्रव्यकी जो कृतियाँ हैं वे दूसरे जीवोंकी कृतियोंमें कारण नही बन पातीं। जो यहां कुछ स्पष्टरूपमें प्रकट सा मालूम होता है कि किसी के उपदेशसे अनेक लोग तिर जाते हैं तो तिर जाने वालोंने किसका आश्रय लिया? जीवका आश्रय नही लिया किन्तु उपदेशकके जो वचन थे उन वचनोंका आश्रय लिया है। तो पुद्गल ही तो आश्रय बना, जीवके लिए तो अन्य जीव आश्रय अथवा निमित्त भी नही बन पाते। पुद्गलमें भी भीटरूपमें नजर आता है, एक स्कंध है और उस स्कन्धमें अनन्त परमाणु हैं, उनमें एक परमाणु दूसरे परमाणुमें रूप, रस, गंध, स्पर्श परिणति क्रिया ये कुछ नही डाल सकता है। तो वस्तुस्वरूपकी बात तो यह है कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है लेकिन जितने उत्कृष्ट काम होते हैं, पूर्ण स्वभावविकासकी बात नही कह रहे हैं, स्वभावविकासरूप बात होनेपर भी जिसमें कुछ विभवोंका भी संसर्ग है ऐसी परिणतियां कोई आश्रय और निमित्तका सन्निधान पाकर होती हैं। जिनका संहनन उत्कृष्ट है, जीवोंके द्वारा किए गये उपसर्गों

की सहनशीलता विशेष है ऐसे संहननधारी पुरुष उत्कृष्ट ध्यानके पात्र बन पाते हैं। तो उत्कृष्ट संहनन स्त्रीवेदमें नही माना गया है, वहां केवल ३ संहनन होते हैं। कर्म-भूमियां महिलाओंकी बात कह रहे हैं भोगभूमियां महिलावोंकी बात नही कह रहे हैं। भोगभूमियां स्त्रीपुरुष दोनोंको मोक्ष नही है, पर कर्मभूमियां महिलाओंमें ३ अंतिम संहनन हो सकते हैं। वहां आदिके ३ संहनन नही माने गए हैं। तो ऐसे शरीरमें उत्कृष्ट ध्यानकी पात्रता नही होती। चंचलता तो उत्कृष्ट बन सकती है किंतु स्थिरता उत्कृष्ट नहीं बन सकती।

स्त्रियोमें पञ्चम गुणस्थान तकके संयमकी पात्रता —हां संयममात्रकी बात यदि कहते हैं कि स्त्रीजनोंके संयम होता है, तो हाँ होता है, उनका उत्कृष्ट संयम आर्यावृत तक माना गया है। आर्याव्रतमें यद्यपि भावोंकी उत्कृष्टताको लेकर निरखा जाय कि इन भावोंमें उत्कृष्ट भाव कितने हो पाते हैं उनकी दृष्टिसे उन्हें मुनिवत् कहते हैं। पर करणानुयोगकी दृष्टिसे पंचम गुणस्थान ही माना गया है। छठा गुण-स्थान स्त्रीजनोंमें सम्भव नही है। गुण शब्दका अर्थ यह है कि श्रद्धा और चारित्र गुणोंका विकास ? श्रद्धागुणके विकासकी भी बात यह है कि स्त्री जब क्षायिक सम्य-क्त्व उत्पन्न नही करते और उसके पहिले मनुष्य आयुका बन्ध कर लेते हों तो वे मनुष्य भोगभूमिमें जाते हैं पर वहां भी वह पुरुष ही तो होगा ? स्त्रीवेदमें इसकी भी उत्कृष्टता नहीं मानी गयी है। चारित्रकी उत्कृष्टता तो सम्भव ही क्या है ?

सवस्त्रसंयमसे मोक्षकी असिद्धि – मोक्षका कारणभूत उत्कृष्ट संयम स्त्री जनोंमें इस कारण नही है कि उनका सवस्त्र संयम है। सवस्त्र संयममें उत्कृष्टता नही बन सकती। संयमकी उत्कृष्टता तो निर्ग्रंथ अवस्थामें ही सम्भव है। तो समस्त संयम पना हेतु असिद्ध नही है, स्त्रियोंमें कभी निर्वस्त्र संयम नहीं देखा गया है और न आगममें बताया गया है। और ऐसा भी करना युक्त नही कि आगममें नही बताया गया फिर भी मोक्ष सुखकी अभिलाषासे स्त्रीजन वस्त्रोंका त्याग करदें तो यह आज्ञाका उल्लंघन करनेसे तो मिथ्यात्वकी आराधना बन जावेगी। सम्यक्त्व भी उनके नही रहा। तो जहां सम्यक्त्व ही नही रहा, उसका नाम संयम पड़ ही नही सकता। ऐसा भी नही कह सकते कि पुरुषोंका तो निर्वस्त्र संयम हेतु बनेगा और न स्त्रियोंका सवस्त्र संयमहेतु बनेगा। यह बात क्यों युक्त नही हैं कि मोक्षका स्वरूप एक प्रकारका है और जिस प्रकारके कारणोंसे मोक्ष हो सकता है तो उस मोक्षके कारण भी एक प्रकारके ही सकते हैं। यदि इस प्रकारकी हठ करोगे कि पुरुषमें तो अवस्त्र संयमसे मोक्ष होता है और स्त्री जनोंका सवस्त्र संयमसे मोक्ष होता है तो ऐसा जब कारणभेद डालते हैं तो उनका कार्य जो मोक्ष माना गया उसमें भी भेद पड़ जायगा और फिर जैसे स्वर्ग सोलह हैं, अनेक स्वर्ग हैं तो इसी प्रकार मोक्ष भी अनेक हो जायेंगे। कोई निम्न दर्जे का मोक्ष कोई उत्कृष्ट दर्जेका मोक्ष, फिर तो जो देश संयमीजन हैं उनको भी मुक्ति

हो जायेगी और अगर ऐसा मान लो कि होने दो मुक्त, गृहस्थोंकी भी मुक्ति होती है तब फिर साधु भेष ग्रहण करना अनर्थक हो जायगा। पर ऐसा नही है। तो सवस्त्र संयम पालन करने वालोंकी मुक्ति नही है। गृहस्थ लोग सवस्त्र हैं तो उस सवस्त्र अवस्थामें कहां उनकी मुक्ति होती ? परम प्रकर्ष प्राप्त ज्ञान और चारित्र सवस्त्रधारी संयमके साथ नही आ सकते। और फिर यह बात बतलावे कि सवस्त्र संयममें भी मुक्ति होती है यह तुमने कैसे जाना ? श्वेताम्बरोंसे पूछा जा रहा है। कहोगे कि हमने तो आगमसे जाना तो तुम्हारा आगम तुम्हारे लिए ही तो प्रमाण है, अन्य जनोंके लिए तो आगमाभास है। वह तो अप्रमाण है। यदि किसीका भी आगम हो और उसे कोई दूसरा प्रमाण मान ही ले ऐसा नियम बनाओ तो यज्ञ अनुष्ठान, पूजन, होम, हवन आदिक ये भी अनेकोंने अपने आगममें कहे हैं तो उनके इस हिंसा आदिक अनुष्ठानको भी मानना पड़ेगा इसलिए आगम तुम्हारा तुम्हारे पास है युक्तियोंसे सिद्ध करें और सहायक योगमें बताई गई मुख्य युक्तियोंसे सिद्ध करिये। जो सवस्त्र संयमधारी हैं उनकी मुक्ति सम्भव नहीं है। सो जो अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप मोक्षका लाभ है यह पुरुषोंमें ही सम्भव है।

साधुजनोंसे अवन्दनीय सपरिग्रह होनेसे स्त्रीमुक्त्यभाव स्त्रियां मोक्षके कारणभूत संयमसे सम्पन्न नही होती हैं क्योंकि स्त्रियां साध्वी व्रत लेवें, तो भी साधु पुरुषोंके द्वारा वन्दनीय नही होती। इससे सिद्ध है कि स्त्रियोंका संयम मोक्षका कारणभूत नहीं हैं। और इसका अनुमान प्रमाण है कि स्त्रियोंको मोक्ष नहीं है, क्योंकि वे साधुवोंके द्वारा वन्दनीय नही हैं। यह हेतु असिद्ध नहीं है, श्वेताम्बरोंके ग्रन्थोंमें ही खुद लिखा है कि यदि १०० वर्षकी भी दीक्षित आर्यिका हो तो उस आर्यिकाके द्वारा एक दिनका भी दीक्षित साधु पूज्य होता है। वह आर्यिका एक दिनके दीक्षित साधुको भी नमस्कार करेगी इससे सिद्ध है कि स्त्रीजनोंका संयम मोक्षका कारणभूत नहीं है. और भी हेतु दे रहे हैं कि स्त्रियाँ वहिरङ्ग और अन्तरङ्ग दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे युक्त रहा करती हैं इस कारण उनका संयम मोक्षका कारणभूत नहीं है। जैसे कि गृहस्थोंका संयम मोक्षका कारणभूत नहीं है. इसी प्रकार स्त्रियाँ भी बाह्य और आभ्यंतर परिग्रहों से युक्त हैं। स्त्रीजनोंके द्वारा बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह सर्वथा त्यागे नही जा सकते इस कारण उनका संयम मोक्षका कारणभूत नहीं है।

वायुकायहिंसापरिहारार्थ वस्त्राधानकी विडम्बित युक्ति—यहाँ श्वेतांमर लोग कह रहे हैं कि वे स्त्रियां इसलिए वस्त्र रखती हैं कि शरीरमें रहती है गर्मी तो शरीरकी गर्मीके कारण वायुकायके जीवोंकी विराधना हो जायगी। तो शरीरकी गर्मीसे वायुकायके जीवोंका घात न हो जाय। उनके घातके निवारणके लिए वे स्त्रियां वस्त्र पहिनती हैं। यद्यपि अपने शरीरमें अनुराग रंच नही है, फिर भी उन जीवोंकी हिंसा न हो जाय इस भावनासे प्रेरित होकर वे स्त्रियां वस्त्र धारण करती हैं। तो

श्वेताम्बरोंके इस कथनका उत्तर देते हैं कि शरीरकी गर्मीमें वायुकायके जीवोंका घात न हो जाय इस कारण वस्त्र धारण किया जाता है तो पुरुषोंमें अगर निर्ग्रन्थवृत्ति हो जाय वस्तु त्याग करनेकी वृत्ति हो जाय तो फिर इस हेतु से वे हिंसक सिद्ध हो गए। तो अगर ऐसा मानोगे कि वायुकायके जीवोंकी हिंसा न होने पाये इस उद्देश्यसे वे स्त्रियां वस्त्र पहिनती हैं तो फिर इसमें साधुवोंके हिंसाका प्रसंग आ जायगा। यदि वे निर्ग्रन्थ मुद्राधारी साधु शरीरमें वस्त्र न धारण करनेसे वायुकायके जीवोंकी हिंसा कर रहे हैं तो फिर अरहतदेवने निर्ग्रन्थताका वीतराताका उपदेश क्यों दिया सीधे यही कह देते कि वस्त्रधारी गृहस्थ भी मुक्तिके पात्र होते हैं। अरे जब वस्त्र सहित गृहस्थ मुक्तिके पात्र हो गए तो तुम्हारे आगममें जो आचेलक्य, औद्देशिक आदि हैं वे सब व्यर्थ हो जायेंगे। जो १० प्रकारके संयम बताये हैं वे फिर व्यर्थ हो जायेंगे। और फिर यह बात है कि ग्रहण कर भी ले वस्त्र तो जंतुवोंकी हिंसा तो बराबर रही आयी क्योंकि वस्त्रके द्वारा हाथ तो सदा ढके न रहेंगे। पैर उघड़े रहेंगे तो हाथ पैरोंकी गर्मीसे जीव हिंसा बराबर रही तब तो जीव हिंसाका परिहार नही किया जा सकता। वस्त्र ग्रहण करनेसे तो हिंसा अधिक होगी।

घातोपकरण वस्त्रके विधानमें अनेक आपत्तियाँ—घातका उपकरण होने पर भी यदि उन वस्त्रोंको स्वीकार कर रहे हैं तो केश बाल आदिकका फिर लुंचन न करना चाहिये। क्योंकि वहां पर भी जुवां लीख वगैरह हैं, उन केशोंका लोंच करनेसे तो उन जीवोंको बाधा आ जायगी। और फिर कभी उपवास भी न करना चाहिये क्योंकि पेटमें जो कीड़े पड़े होंगे तो उनको उपवास करनेपर बड़ा कष्ट होगा। वस्त्रों के धारण करनेसे वस्त्रोंको धोया, सुखाया, फैलाया तो वस्त्रमें हवा भी लगी तो वस्त्रों के फैला देनेसे उत्पन्न हुई जो हवा है उससे फिर आकाश प्रदेशमें रहने वाले जतुवोंको बाधा हुई। स्त्री बाह्य और आभ्यंतर परिग्रहोंसे सहित हैं इस कारण मोक्षके कारण भूत सयमके धारण करने वाली नही हो सकती हैं। इन सब बातोंको समझनेसे स्त्री पर्यायमें और पुरुष पर्यायमें बड़ा अन्तर समझमें आ रहा होगा। यह तो मोक्ष मार्गकी बात है पर उनके झझट लगे भी कितने बड़े हैं और उनको कितने समयपर कष्ट हुआ करता है, सो वह किसी पुरुषमें सम्भव नही है। तो स्त्री पर्यायमें भी अपनी हट आप हैं और पुरुष पर्यायमें आप हैं तो उन्हें एक धर्मपालनसे प्रेरणा मिलनी चाहिये कि देखो हमको बड़ा दुर्लभ मानव जीवन प्राप्त हुआ है, अब हम अपने ज्ञानकी आराधनामें ऐसा बल दें कि अब हमारा जन्म किसी भी नीची पर्यायमें न हो। स्त्रीजन सुनकर अपनेमें धर्मपालनका यों साहस बनायें कि अभी हमको कुछ और गति बढ़ाना है मोक्षमार्गमें चलनेके लिए इस स्त्री पर्यायसे न प्राप्त होगा। उसके हेतुवोंको देते हुए इस समय यह हेतु चल रहा कि चूंकि वे स्त्रियाँ वस्त्र पहिनती हैं इस कारण समस्त संयममें मुक्ति सम्भव नहीं है, यह बहानेकी बात ठीक नही कि वस्त्र धारण करनेसे शरीरकी गर्मीसे उत्पन्न हुए जीव न मरेंगे। यदि ऐसा कहोगे तो फिर मुनिजनोंको विहार करनेके लिए

मना क्यों नहीं किया गया। मुनिजन तो निर्ग्रन्थ मुद्राधारी होते हैं। उनके शरीरमें गर्भके कारण जीवोंकी हिंसा संभव है सो हिंसापरिहारके लिये वस्त्राधान मानोगे तो इसमें तो विरोध आयगा।

वस्त्र हिंसाका व क्षोभका कारण होनेसे सवस्त्रसंयमसे मुक्तिकी असिद्धि – जैसेकि यज्ञका अनुष्ठान पशुवोंकी हिंसा करने वाला होनेसे त्याज्य है इसी प्रकार वस्त्रग्रहण भी हिंसाके विषय होनेसे त्याज्य है। बाह्य और आभ्यंतर समस्त परिग्रहोंका त्याग करनेसे संयम बनता है। ये परिग्रह हिंसा, क्षोभ और अन्तरङ्ग मूढ़ता के कारण बनते हैं। इस कारण अन्य उपकरण भी त्याज्य है। इसके सम्बंधमें और भी कहा कि जब बाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रह नहीं रहे, सब प्रकारके परिग्रहोंका त्याग हो गया उसका नाम है संयम। मनमें क्षोभ रहना सम्भव है, कोई वस्त्र फट जाय तो उसकी याचनाका भाव हो सकता है मांगनेका भाव बन सकता है। तो जहाँ याचनाका भाव आया बस याचना हो चुकी। वस्त्र फट जाय तो उसके धोने सुखाने, सीने आदि की जरूरत पड़ती है और उन कार्योंके करते हुएमें क्षोभ भी करना पड़ता है। तो जहाँ इस प्रकारके परिग्रह सम्बन्धी क्षोभ उत्पन्न होते है वहाँ संयम हो ही नही सकता। तो इन वस्त्रोंका ग्रहण करना संयमका घातक ही है। जब तक सकल परिग्रहोंका त्यागकर निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण नही की जाती जब तक संयम टिक नहीं सकता। ऐसी निर्ग्रन्थ मुद्राका धारण करना पुरुषोंमें ही सम्भव है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति अनन्त आनन्दकी प्राप्तिका नाम मोक्ष है, ऐसा मोक्ष पुरुषोंके ही सम्भव है।

लज्जावेदनामनःक्षोभनिवृत्त्यर्थं वस्त्राधानकी युक्तियोंका निरसन — लज्जाकी निवृत्तिके लिए वस्त्रादिक ग्रहण किये जाते हैं तो यों भी कहा जा सकता कि काम पीड़ा आदिककी शान्तिके लिए फिर कामिनी आदिकका ग्रहण क्यों नही कर लिया जाय ? और फिर जिस-जिस चीजके बिना पुरुषोंको पीड़ा उत्पन्न हो फिर वे सब चीजें ग्रहण करना चाहिये जहाँ कुछ भी वेदना हो उसकी शान्ति करनेके लिए साधन जुटा लेना चाहिये। यदि यह कहो कि वस्त्रका टुकड़ा ग्रहण करने पर भी वास्तवमें वे विरक्त हैं तो यों क्यों नहीं कह दिया जाता कि स्त्रीमें रमने पर भी वास्तवमें वे साधु विरक्त ही हैं। इससे वस्त्र ग्रहण करना रंचमात्र भी युक्त नही है। यह भी नही कह सकते कि अपने मनको क्षोभ न हो जाय इसलिए वस्त्र ग्रहण करते हैं तो कहते हैं कि जब उसके वाञ्छा ही नही है, वाञ्छाका कारण नहीं है तो फिर क्षोभका निषेध कैसे सम्भव है ? अरे वह पर्याय ही ऐसी है कि जहाँ आभ्यंतर राग रहता ही है। लज्जा होना यह भी तो एक कषाय है। इस कषायका विनाश स्त्री पर्यायमें हो ही नही सकता इस कारण स्त्रियोंका वस्त्र ग्रहण करना अनिवार्य है। जहाँ वस्त्र ग्रहण है वहाँ तद् विषयक राग है इस कारण सवस्त्र संयममें मुक्ति नहीं हो सकती और फिर एक क्षोभ की निवृत्तिके लिए वस्त्रोंका ग्रहण करना मान रखा है यह बात तो अयुक्त है। साधुवों

की निर्ग्रंन्थ मुद्राको देखकर तो उसमें किसीको राग नहीं उत्पन्न होता। कारण कि उनका शरीर देखनेमें मलिन है। वे स्नान नहीं करते, किसी भी प्रकारका शृंगार नही करते। मलिनता उनके देह पर अधिक बसी है इसीलिए तो उन्हें स्वयंके शरीरको देख कर राग नहीं होता, वास्तविकता यह है। इससे मानना चाहिये कि जो वस्त्र ग्रहण किये जाते हैं वे परिग्रह कहलाते हैं। तो जहां निर्ग्रन्थता नही है वहाँ न तो सयम चलता है और न मोक्षकी प्राप्ति ही सम्भव है। श्वेताम्बर लोग सवस्त्र भी मोक्ष मानते हैं और इसी कारण भी सवस्त्र मुक्तिका समर्थन है और यहाँ तुमने बताया कि कोई गृहस्थ भी हो सवस्त्र और किसी क्षण उसका भाव बड़ा ऊँचा बन जाय तो उसका भी मोक्ष सम्भव है। इसी आधारपर बहुत वस्त्रोंको रखना भी धीरे-धीरे एक सम्मत मान लिया गया।

सवस्त्र मुक्ति माननेके कारणकी घटना—श्वेताम्बर सिद्धान्तमें साधुके यह वस्त्र रखना कबसे शुरु हुआ ? तो उनका प्रतिपादन है कि करीब हजार वर्ष पहले कोई १२ वर्षका अकाल पड़ा उस अकालके समयमें लोग संयमसे न रह सके। तो आहार किए बिना गुजारा सम्भव नही है, आहार तो करना ही पड़ता है। अब किस तरह आहार करें ? दिनमें आहार करने जायें तो दान देने वाले लोग परेशान होजायें, रात्रिमें आहार लेने जायें तो उसमें भी अनेक विघ्न आये। कहीं कुत्ते लोग उन भिक्षा मांगने वालोंके पीछे लग जायें, कहीं छोटे-छोटे बच्चे लोग उनके पीछे लग जायें। ऐसा वह दुर्भिक्ष काल था। ऐसे दुर्भिक्षके समयमें भिक्षा लेने जाना भी असम्भव हो गया था। तो ऐसे समयमें वे सर्वदा वस्त्र पहिनकर भिक्षा लेने जाने लगे। नग्नरूपमें भिक्षा लेने जाना कठिन बन गया था। तो अब भी श्वेताम्बर शास्त्रोंमें चर्याके प्रसङ्ग में एक वस्त्र पहिनकर जाना कहा है। एकवस्त्र रख सकते हैं दो प्रकारके साधु बताये हैं एक जिनकल्पी और एक अभ्यन्तरकल्पी। जिनकल्पी साधु तो उनका नाम है जो तीर्थंकरके समान निर्ग्रंथ दिगम्बर साधु रहे और जो वस्त्रसहित साधु रहे वे स्थविर कल्पी साधु कहलावे। श्वेताम्बरोंके आगममें जिनकल्पी साधु सर्वोत्कृष्ट हैं, उनके नीचे फिर सवस्त्र साधुवोंकी कक्षा मानी गई है। फिर उन निर्ग्रंथ और सवस्त्रमें परस्पर ऊँच-नीचपनका कुछ व्यवहार चलने लगा तब फिर सवस्त्र मुक्ति और सवस्त्रका अधिक विधान प्रसिद्ध कर दिया और आजके समयमें तो अनेक तरहके वस्त्रोंके नाम विधानमें रख दिये गए हैं। भला बतलावो जहाँ वस्त्रोंका सग्रह हो वहाँ उनके रखने उठानेका विवाद न होगा क्या ? अरे इन पर वस्तुओंके संग्रह विग्रह करनेसे इस आत्माका कुछ भी भला न होगा ! कहां तो यह आत्मा निर्विकल्प अखण्ड ज्ञानानन्द रूप है इसका वह ज्ञानानन्द स्वरूप इस एक उत्कृष्ट निर्विकल्प समाधिके द्वारा ही सिद्ध हो सकता है। और कहां ऐसे उपकरण बना लिये कि जिसमें विकल्प भी बहुत सम्भव हैं, तो वस्त्र धारण करके मुक्ति पुरुषोंमें भी असम्भव है और स्त्रीजन तो वस्त्र बिना रह ही नहीं सकते। आगममें विधान हो नहीं है तो जो सवस्त्र हैं उनका संयम

मोक्षका हेतुभूत नहीं है। सवस्त्र पुरुषोंकी जो आराधना है उससे मोक्ष प्राप्त न होगा। मोक्ष तो प्राप्त होगा रत्नत्रयकी पूर्ण साधनासे।

पिच्छौषधादि ग्रहण करनेमें रागपोषणका अभाव—यहाँ यह भी नहीं कह सकते कि तब तो पिछी आदिक उपकरण भी न ग्रहण करना चाहिये। पिछी जन्तुरक्षा के लिए है। जंगलमें मोरके द्वारा अपने आप छोड़े हुये ३–४ पिच्छ अगर ले लिए तो वे तो जंतुरक्षाके लिए हैं। न वहाँ राग है न बाह्यमें कोई आरम्भ है। हाँ बहुतसे पिच्छ इकट्ठे करके पिछी बनाई जाती है यह न था पहिले, पिच्छग्रहण वैराग्य का साधनभूत था। रोगनिवृत्यर्थ औषधि ग्रहण करना भी अवैध नही है। शरीरमें वस्त्र ग्रहण करनेसे ममकार आ जाता है। इस तरहसे औषधि ग्रहण करनेमें ममकार नही आता। औषधि भी ग्रहण करते हैं तो वह रोगके ग्रहण करनेमें कारणभूत है। उसमें निर्ग्रन्थता समाप्त नही होती। वह भी ममताके लिए नही है। हाँ वस्त्रका धारण ममताके लिए है। तो वस्त्र धारण करके जो संयम है वे मुक्तिका कारण नही हो सकते। तो जो–जो लोग वस्त्र पहिने हों उन उनका मोक्ष नही। स्त्रीजनोंमें निर्वस्त्रता कभी सम्भव ही नही है, स्त्रीजनोंके मुक्तिका सर्वथा निषेध है। मुक्ति होना तो पुरुषोंमें ही सम्भव है। पुरुष हीं निर्ग्रन्थ होकर वीतरागी होकर अनन्त ज्ञान दर्शन, आनन्द, शक्तिके चतुष्टयको प्राप्तकर मुक्त हो जाते हैं।

उत्कृष्ट संयमके लिये वस्त्रकी अवैधता—मोक्षके साक्षात् उपायोंमें परम नैर्ग्रंथ्य अवस्थाकी आवश्यकता है वहां वस्त्रादिक न चाहिये। इसपर शङ्काकारने यह कहा था कि जैसे पिछी औषधि आहार इनका ग्रहण करते हैं इसी प्रकार वेदनाप्रतिकारके लिए वस्त्रको भी ग्रहण कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें यह कहा गया कि वस्त्र तो जंतुरक्षाके काम नही आते प्रत्युत 'ममेदं' भावका सूचक है, किन्तु ये औषधि और पिच्छिकायें जीवन व जंतुरक्षाके लिए हैं, क्योंकि इनमें ममताभाव नहीं आता है और फिर कोई जब उत्कृष्ट निर्ग्रन्थता अवसर होता है तो फिर पिछीकी भी जरूरत नही रहती। जैसे जिन्होंने ६–६ माहका योगका धारण किया, एक–एक वर्षका तपश्चरण किया था और तपश्चरणके बाद मुक्त हो गए तो वहां पिच्छिकाका क्या ग्रहण है? और आहार, औषधि आदिक सिद्धान्तके अनुसार लिए जायें जिनके उद्गम आदि दोष नही लगते वे रत्नत्रयकी आराधनाके ही कारण बनते हैं। ऐसे निर्दोष रत्नत्रय की आराधनाके ही कारण बनते हैं। ऐसे निर्दोष रत्नत्रयकी आराधनाके हेतुभूत आहार औषधि आदिक ग्रहण किए जाते तो उससे मोक्षहेतु नष्ट नही होता, क्योंकि ऐसे आहार औषधिके ग्रहणमें रागादिक अन्तरंग परिग्रह भी नही उत्पन्न होते और बहिरंग परिग्रह भी नही आते। जैसे कि वस्त्रमें कोई शृङ्गारकी बात होती है तो कुछ मनको व्यासक्त बनाना जाता है तो उसमें परिग्रहकी बात आती है, पर इसमें परिग्रह की बात नही है। ये तो मोक्षके हेतुके उपकारक ही हैं।

सविधि आहारादिके ग्रहणमें अवैधताका अभाव— आहार ग्रहण न करें तो जीवन न रहे जीवन न रहे तो बीचमें आत्मघात हुआ तो न जाने क्या भव मिले, साधना न बन सकेगी। आहार ग्रहण किए बिना यदि बीच कालमें ही विपत्ति आगई तो आत्मघात बन गया। पर वस्त्रमें तो किसी पुरुषके लिए ऐसा नहीं है कि वस्त्र ग्रहण न करे तो उसपर आपत्ति आये या आत्मघाती बने और आहार तो त्याग भी दिया जाता है। कोई षष्ठ उपवास करता, कोई षष्ठभक्त त्याग करता, कोई अनेक उपवास करते तो मुमुक्षुजन वस्त्र भी त्याग देते हैं पर स्त्रियोंके द्वारा वस्त्र नहीं त्यागे जाते आहार औषधि लेते हैं पर त्याग भी तो दिया जाता है ऐसा स्त्रियोंके लिए वस्त्र का प्रसङ्ग नहीं आता कि स्त्रीजन वस्त्र लेकर कभी उन समस्त वस्त्रोंको त्याग भी देती हैं। इससे चूँकि स्त्रियां निर्ग्रंथतामें नही आ सकतीं, उनमें सवस्त्र संयम रहता है अतएव उनका संयम मोक्षका कारण नहीं है।

वस्त्र ग्रहणमें मूर्च्छाका अपरिहार होनेसे महाव्रतकी अकल्प्यता— अब शंकाकार कहता है कि वस्त्रके सिवाय बाकी समस्त परिग्रहोंका त्याग होनेसे इस स्त्रियों के महाव्रत हो जाता है। सबका त्याग हो गया तो निर्ग्रन्थ अवस्था आ गयी, एक वस्त्र को छोड़कर सबका त्याग होनेका नाम निर्ग्रन्थता है। यदि ऐसा कहोगे तो हम ऐसा कह देंगे कि लोभ कषाय के अलावा अन्य सब कषायोंका त्याग कर देनेसे अकषाय हो जायेंगे। वस्त्र ग्रहण करने पर भी ममताका परिणाम नहीं है, ऐसी निर्ग्रन्थता रह जायगी यह बात सम्भव नहीं है। कोई बुद्धिपूर्वक हाथसे गिरे हुए वस्त्रको उठाये, धरे और कहे कि मेरे मूर्छा नही है उस बातो कौन चेतन श्रद्धान कर सकेगा ? वस्त्रग्रहण करें और फिर भी कहें कि मूर्छा नहीं है, ममता नही है यो यों स्त्रीको भी रखे। काम सेवन करे और कहे कि मेरे इच्छा नहीं है तो ऐसा भी अनिष्ट प्रसंग फिर हो सकेगा, इसलिए वस्त्रके ग्रहण करनेमें दोनों प्रकारकी निर्ग्रन्थता नही रहती। न बाह्य परिग्रहों का त्याग बना न अन्तरङ्ग परिग्रहोंका त्याग बना। जब निर्ग्रन्थता नही हो सकती तो स्त्रियोंके मोक्ष नही हो सकता।

स्त्रियोंमें बाह्याभ्यन्तर आकिञ्चन्य न हो सकनेसे स्त्रीमुक्तिकी असिद्धि

भैया ! जो भी नवीन कार्य होता है वह कारणजन्य होता है क्योंकि कार्य होनेसे। कुछ भी चीज बनाई जाती है, तो कारणोंसे बनती है। मोक्ष मायने छुटकारा। पहिले छुटकारा न था, अब छुटकारा हो जाय, नवीन स्थिति है, एकदम परिवर्तित जो स्थिति है, यद्यपि उसमें शुद्ध आशय है लेकिन अशुद्धसे एकदम शुद्ध अवस्थामें आना यह तो नवीन कार्य है, वह बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग कारणपूर्वक होगा। तो मोक्षके लिए अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग कारण क्या है ? आकिञ्चन्य। बाह्य और अन्तरङ्ग-आकिञ्चन्य होना यही है मोक्षका हेतु। स्त्रियोंमें ये दोनों ही आकिञ्चन्य नहीं रह सकते, फिर कैसे मोक्ष हो ? तो जो हेतु दिया गया कि स्त्रियोंके मोक्ष होता है अविकल

संयम होनेसे तो यह बात असिद्ध है उसका कारण पूर्ण नहीं मौजूद है इसलिए मुक्ति नही है।

आगमसे भी स्त्रीमुक्तिकी सिद्धिका अभाव - यह भी नही कह सकते कि आगमसे स्त्रीमोक्ष सिद्ध हो जायगा। स्त्रियोंकी मुक्ति बताने वाला कोई आगम नहीं है। शंकाकार जिसे आगम मानता है वह तो आगम मानता रहे पर आगम तो वही माना जायगा जो दोनोंके द्वारा सम्मत हो। यह भी शंका नहीं कर सकते कि दिगम्बर सिद्धान्तके आगमसे भी यह सिद्ध है कि स्त्रियोंको भी मोक्ष होता है क्योंकि यह लिखा है -नकिपुंवेदं वेदंता जो पुरिसा खवगसेढिमारूढा, सेसोदये णवि तहा झाणुवजुत्ता य सिज्झंति। अर्थात् पुरुष वेदका अनुभव करने वाला पुरुष क्षपक श्रेणीपर आरूढ़ होकर मोक्ष जाता है और स्त्रीवेद नपुंसक वेदसे भी ध्यानमें उपयुक्त होकर मोक्ष जाता है। करणानुयोगमें बताया है कि स्त्री वेदका उदय ९ वें गुणस्थान तक है, पुरुष वेद भी ९ वें गुणस्थान तक है। ८ वें गुणस्थानमें क्षपक श्रेणी प्रारम्भ होती है। जब स्त्रीवेदसे क्षपक श्रेणीमें चढ़े और मुक्त हो गए तो स्त्रीमुक्ति तो सिद्ध हो गयी। समाधान देते हैं कि इसका अर्थ यह है कि साधु पुरुषोंके द्रव्यसे तो सब पुरुषवेदी ही हैं लेकिन भाववेदकी अपेक्षा किसी साधुके स्त्रीवेदका उदय है किसीके पुरुषवेदका और किसीके नपुंसक वेदका। तो जिनके स्त्रीवेदका उदय है वे उत्कृष्ट परिणामोंमें आकर क्षपक श्रेणी माड़ लें तो ९ वें गुणस्थानमें स्त्रीवेदका क्षय करके मुक्त हो जायेंगे। क्षय तो दोनों वेदोंमें करना पड़ता है पर जिनके स्त्रीवेदका उदय है वे पहिले अन्य वेदोंका क्षय करके फिर स्त्रीवेदका क्षय करके मुक्तिका उपाय धारते हैं तो इससे स्त्रीमुक्ति सिद्ध नहीं हुई। पुरुषोंमें ही मोक्षकी सिद्धि होती है। समाधान में यह कहा गया है कि इसमें जो दो श्रेणियां हैं उपशम श्रेणि व क्षपक श्रेणि, सो उपशमश्रेणिमें भी तीनों वेदका सम्बन्ध है और क्षपक श्रेणिमें भी तीनों वेदोंका सम्बन्ध है सो, उदय तो भावोंका हुआ करता है द्रव्यका उदय नहीं होता। द्रव्य, शरीरमें यह पुरुष है यह स्त्री है इस प्रकारका भेद कराने वाला कर्मोदय कोई नहीं माना गया। पुरुषवेद स्त्रीवेद, नपुंसक वेद ये मोहनीय कर्मके उदयसे होते हैं नामकर्मसे नहीं। ये सब जीव विपाकी प्रकृतियाँ हैं।

अस्त्रीत्व हेतु और एक आगमांशोद्धरणसे स्त्रीमुक्तिनिरसन अब अनुमानसे भी समझ लीजिये कि स्त्रियोंको मुक्ति नही है क्योंकि वे स्त्रियां हैं अन्यथा स्त्रीपना उनमें न होता। आगममें यह बताया गया श्वेताम्बर सिद्धान्तमें भी रत्नत्रय की आराधनामे मुक्ति जघन्यसे तो ७-८ भवसे होती है और उत्कृष्टसे दो तीन भवसे होती है। यहां रत्नत्रयकी आराधनामें मुख्यतया सम्यक्त्व लिया गया होगा, अन्यथा समग्र रत्नत्रय लिया जाय तो इसका अर्थ यह है कि उसकी मुक्ति उसी भवमें हो जाय ऐसा नहीं हो सकता है। तो सम्यग्दर्शनकी आराधना की किसी जीवने और वह

जल्दी ही मोक्ष भी जायगा तो दो तीन भव तो लगेंगे ही। तो वह स्त्रीवेदमें उत्पन्न न होगा। पुरुषवेदमें उत्पन्न होकर मोक्ष जायगा। स्त्रीवेदसे मुक्ति नहीं होती। शंकाकार कहता है कि देखो अनादि मिथ्यादृष्टि भी कोई जीव है तो पूर्वभवकी विशुद्धि से जब अशुभकर्मोंकी निर्जरा कर दिया तो रत्नत्रयकी आराधना करके मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। इसमें कोई। विरोध नहीं है। समाधान देते हैं कि अशुभकर्मोंकी निर्जरा करे। उसकी ही तो यह बात है। और अशुभकर्मोंकी निर्जरा हो तो इसका अर्थ है कि स्त्रीवेदादिक अशुभकर्मोंकी निर्जरा हुई तब फिर स्त्रीबंध नही रहा, अब रत्नत्रय की आराधना करके मुक्त चले जायेंगे। यह बात श्वेताम्बरोंने इसपर कहा कि रत्न त्रयकी आराधना करके दो तीन भवोंमें ही शीघ्र मोक्ष जाता है। तो इसके खिलाफ भरतचक्रवर्ती आदिककी तरह ऐसे जीव पाये गए हैं कि अनादि मिथ्यादृष्टि थे, उस ही भवमें सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया उस ही भवमें सम्यकचारित्र किया और उस ही भवमें मुक्ति प्राप्त की। जब अनादि मिथ्यादृष्टि भी उससे पहिले भवमें समस्त कर्मों को दूर करके हुआ ना, अब यह निकट भव्य, और उसी भवमें रत्नत्रयकी आराधना करे तो मोक्ष हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि पूर्व भवमें जो अशुभकर्म निर्जीर्ण कर चुके उसकी बात कह रहे हैं कि जो स्त्रीवेद अशुभकर्म है उनकी निजरा हो गयी, अब स्त्रीवेदके रूपमें उत्पत्ति नही हो सकती। अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्री पर्यायमें उत्पन्न नहीं होता। यह सिद्धान्त दोनों जगह समान है। सम्यक्त्व होनेके बाद यह जीव स्त्री पर्यायमें नही उत्पन्न होता। इससे यह सिद्ध हुआ कि स्त्री वेद अशुभकर्म है उसका निर्जरण न होनेपर फिर दूसरे भवमें स्त्रीवेदसे मुक्ति कही गई है। स्त्रीवेदकी निर्जरा हो जायगी तो स्त्रीपर्यायमें मोक्ष कहां सम्भव हुआ।

पुरुषादन्यत्वात् स्त्रीमुक्तिका निषेध—स्त्रीपर्यायसे मोक्ष नहीं है क्योंकि वह पुरुषसे भिन्न है। जैसे नपुंसक पुरुषोंसे भिन्न होते हैं, उनकी भी मुक्ति उस पर्याय से नहीं है। नपुंसक मोक्ष जायें, यह तो श्वेताम्बरोंने भी नहीं माना, ऐसा माननेका कारण यह हो सकता कि हिजड़ोंकी संख्या बहुत थोड़ी है, उनके बहुमत हो नहीं सकता इसलिए नपुंसकमें मोक्ष जाननेकी जरूरत पड़ी। स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे भी भी अधिक है एक तो पुरुषोंकी भांति स्त्रियोंकी बहुसम्मति होनेसे ये आगम बना दिये और स्त्रियोंको भी यदि मोक्ष कहा जाय तो वस्त्रसहित साधुवोंके समर्थनमें बल मिलेगा कि साधुजन वस्त्र भी पहिने रहें तो भी ऐसा संयम पा सकते हैं जिससे उन्हें मुक्ति प्राप्त हो। लेकिन चूंकि वे पुरुषोंसे अन्य हैं इसलिये उनको मुक्ति नही। अन्यथा पुरुषोंसे अन्य होनेपर भी स्त्रियोंको मुक्ति कही जाय तो नपुंसकोंको भी मोक्ष मानो। यह भी नही कह सकते कि पुरुषोंको भी मोक्ष नही है क्योंकि वे स्त्रियोंसे भिन्न हैं। यह यों नहीं कह सकते कि पुरुषोंका मोक्ष तो श्वेताम्बर दिगम्बर दोनों सिद्धान्तोंने माना है। पर जहाँ केवल एकका ही आगम है स्त्रीमुक्ति बताने वाला वह आगम दिगम्बरके प्रति प्रमाणभूत नही हो सकता। क्योंकि आगमकी प्रमाणता देकर कोई

वस्तुस्वरूप सिद्ध किया जाना हो तो वही आगम बताया जा सकता जो वादी प्रतिवादी दोनोंके द्वारा सम्मत हो।

मोक्षकी उत्कृष्ट ध्यानफलता होनेसे स्त्रीमुक्तिका निषेध—अब अन्य भी अनुमान कीजिये! स्त्रियोंके मोक्ष नहीं है क्योंकि मोक्ष उत्कृष्ट ध्यानका फल है। मोक्ष ऊँचे ध्यानका फल है सो चूंकि स्त्रियोंके उत्कृष्ट ध्यान नहीं बनता, अतः वे ७वें नरकमें भी नहीं जा सकतीं। उत्कृष्ट अशुभध्यान जो रौद्रध्यान हो, उसका फल है सप्तम नरकमें गमन। तो ध्यानकी उत्कृष्टता चाहिए। सप्तम नरकमें जानेके लिये जैसे उत्कृष्ट आर्त रौद्र ध्यान हैं इसी प्रकार मोक्ष जानेके लिये उत्कृष्ट धर्मध्यान एवं शुक्ल ध्यानकी आवश्यकता है। ये चीजें स्त्रियोंके बन नहीं सकती। इससे सिद्ध है कि स्त्रियोंके मोक्ष नहीं है।

देहवैलक्षण्यसे स्त्रीमुक्तिनिषेधकी सूचना—आगममें स्त्रीशरीर और पुरुष शरीरमें बड़ा अन्तर बताया गया है। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंकी उत्पत्ति स्त्रियोंके शरीरसे होती ये मनुष्य गर्भज नहीं होते। मनुष्य गतिका उनके उदय है जो लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य होते हैं। वे मनुष्य हैं और जहाँ तक कि संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं, भले ही वे श्वासमें १८ बार जन्म-मरण कर लें और उनके थोड़े ही भव होते हैं लेकिन इस मनुष्यभवमें वे अधिक समय चल नहीं सकते कि दो चार मिनट चलते रहें, पर हो जाते हैं संज्ञी। वे संज्ञी हैं, पञ्चेन्द्रिय हैं, सम्मूर्छन वाले लब्धपर्याप्तक मनुष्य ... स्त्रियोंकी कोख आदिसे उत्पन्न होते हैं। यह भेद है जो स्त्री पुरुषके अन्तर बताने वाले हैं तो स्त्रियोंको मुक्तिकी बात कहना युक्त नहीं होती है।

स्त्रीमुक्तिनिषेधक कारणोंका उपसंहार—स्त्रियोंकी मुक्तिका निषेध ये अनेक कारण सिद्ध करनेमें समर्थ हैं। एक तो उनके मोक्षके हेतुभूत संयमसम्बन्धी समस्त कारण नहीं चल पाते हैं। मोक्ष होनेमें जो जो साधन, जो जो परिणाम चाहिए वे स्त्रियोंमें सम्भव नहीं हैं। न उनमें उत्कृष्ट विशुद्धि बनती है न उनमें उत्कृष्ट संहनन बन सकता है। दूसरे उनमें मायाकी बहुलता रहती है, उत्कृष्ट माया की अधिकारी स्त्रियां अति गोपनीय मायाचार करनेमें पुरुषोंसे भी अधिक समर्थ हैं। ज्ञानादिकका परम प्रकर्ष स्त्रियोंमें सम्भव नहीं है। स्त्रियोंको श्रुतकेवली तक की बात स्त्रियोंको नहीं कही गयी तो केवलज्ञानकी बात कहना यह कैसे युक्त हो सकता है। ऋद्धि अति विशेषका कारणभूत संयम स्त्रियोंमें नहीं होता तो मुक्तिका साधनभूत संयम कहाँसे बने? चूंकि स्त्रियोंका संयम सवस्त्र संयम है अतः मुक्तिकी पात्रता नहीं। जैसे पुरुषोंमें बताया कि वे सवस्त्र संयम भी लेते हैं, इस प्रकारकी दो बातें स्त्रियोंमें सम्भव नहीं हैं और स्त्रीजन चाहे सैकड़ों वर्षोंकी दीक्षित हों एक दिनका दीक्षित पुरुष भी उनके द्वारा पूज्य वंदनीय होता है। यह भाव भी यह सिद्ध करता

कि स्त्रियोंमें उत्कृष्ट संयम नहीं बन सकता। वस्त्राके धारण करनेसे अनेक हिंसायें होती हैं, ममता आदि लगनेके बड़े भयङ्कर परिग्रह भी लद जाते हैं। यह मेरा, यह अमुकका वस्त्र है इस प्रकारके रागद्वेषका बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। उस समय आत्म-चिन्तनकी बात ध्यानमें नही आती, समता परिणाम वहाँ नहीं रह सकता। तो वस्त्र धारण करनेके कारण ये अन्तरङ्ग परिग्रह भी इस जीवमें लद जाते हैं। वस्त्र धारण करनेका कुछ यह प्रयोजन भी नही है कि जिसके बिना जीवन नहीं टिकता। जो जीवन संयम धारण करनेके लिए आवश्यक था। वस्त्र धारण करने आदिककी बातें ममतादि जागृत होनेकी सूचना देता है। धर्मके हेतुमें वस्त्रका रंच भी उपयोग नही है इससे सवस्त्र संयममुक्तिका साधक नही हो सकता, यह बात युक्तियोंसे भी सिद्ध है, आगमसे भी सिद्ध है। तब यह मानना चाहिए कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त आनन्द, अनन्त शक्तिके चतुष्टय स्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है। जहां अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त शक्ति, अनन्त वीर्य आदिकका पूर्णरूपेण लाभ है वह पुरुषोंमें ही संभव है स्त्रियोंमें संभव नही है, यह बात भली प्रकार सिद्ध होती है।

सूत्रका मूल प्रकरण—यद्यपि यह प्रसङ्ग स्त्रीमुक्तिके निषेधके लिए न था, इसका मूल प्रकरण तो एक निरावरण प्रत्यक्ष ज्ञानके सिद्ध करनेका चल रहा था कि सामग्रीविशेषसे जब समस्त आवरण दूर हो जाते हैं तो ऐसे अतीन्द्रियज्ञान उत्पन्न होते हैं, जो सम्पूर्ण रूपसे समस्त सत् पदार्थोंको जानते हैं। प्रत्यक्षज्ञानकी सिद्धिके सम्बन्ध में अनेक क्रमशः विवाद उत्पन्न होते–होते उन विवादोंके सिलसिलेमें यह विवाद चला कि मोक्षका लक्षण यहाँ मान लीजिये अनन्त ज्ञानादिक चतुष्टयके लाभका नाम मोक्ष है, किन्तु यह मोक्ष पुरुषोंके ही सम्भव है, स्त्रियोंके मोक्ष सम्भव नही। इस प्रकारका विवाद उत्पन्न होनेपर यह प्रमाणित किया गया है कि स्वरूपलाभ उत्कृष्टरूपसे होनेका नाम मोक्ष है, और वह मोक्ष पुरुषोंके ही सम्भव है।

आत्महितके पंथमें वस्तुत्वकी परीक्षाका आवश्यक स्थान - आत्माका हित चैतन्यभवके शुद्ध प्रवर्तनेसे है, अर्थात् रागद्वेष मोह विकल्प विचार इन सबसे रहित केवल जाननमात्र रहनेमें है। जिसमें केवल अपने आपके स्वरूपका जानन ही चलता हैं रहता है और सहज ही जो चाहे जानन स्वभावके कारण अन्य पदार्थ जानन में चलते रहते हैं ऐसी स्थितिमें ही आत्माका हित है। यह स्थिति कैसे प्राप्त हो इस के लिये दो तरहसे प्रयुक्ति लगानी होती है—एक तो सत्यका आग्रह रखनेसे और दूसरे तत्त्वोंका असहयोग करनेसे यह स्थिति प्राप्त होती है। अर्थात् अपना जो सत्य स्वरूप है, अपने चैतन्यमात्र अस्तित्वमें जो कुछ स्वरूप है उस रूप ही अपने आपको मानने और जानने और उस ही प्रकार रहनेमें अपना एक आग्रह हो, संकल्प हो, यही मात्र एक रुचि हो। एक तो इस सत्याग्रहकी जरुरत है, दूसरे आत्मामें जो परतत्त्व, औपाधिक भाव या बाह्य क्षेत्रमें स्थित पर तत्त्व हैं, उन सबके साथ असहयोग नहीं,

वे सब अनर्थ रूप हैं, भिन्न हैं। उनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। मैं उनसे निराला एक चैतन्य मात्र हूं। इस ही सत्यके आग्रहके बलसे परतत्त्वोंका असहयोग हो जाता है। ये दो बातें जब क्रमसे व युगपत् हो जाती हैं तब आत्मस्वरूपमें मग्नता होती है जिस में ज्ञाता द्रष्टाकी स्थिति बनती है। तो ज्ञातृत्व स्थिति हितरूप है। और उस स्थिति के पानेके लिए सत्यका आग्रह और असत्यका असहयोग चाहिये। अब ये दोनों बातें कैसे हों? इसीको इन शब्दोंमें कह लीजिये—उपादान और हानि। सत्यका तो आग्रह हो और असत्यका त्याग हो। ये दोनों कैसे हो इन दोनोंका उपायभूत है उपेक्षा और इन सबसे सम्बन्ध रखने वाली बात है अज्ञाननिवृत्ति। ये सब कैसे हों? इन सब का उपाय है—वस्तुके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो। तो इन सब हितरूप बातोंके लिए यह आवश्यक हुआ कि हम पदार्थोंके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करें, इसीको कहते हैं अर्थ संसिद्धि। पदार्थकी समीचीन सिद्धि। जैसा उनका स्वरूप है उस प्रकार उनका परिचय होजाना इसे कहते हैं अर्थसंसिद्धि। अर्थसंसिद्धि होती है परीक्षासे। जब हम सभी पदार्थोंके स्वरूपका परिचय करें तो उनमें परीक्षा होगी। यह बात ऐसी है क्या? तो उनकी परीक्षा होना आवश्यक है क्योंकि परीक्षा किये बिना जो भी ज्ञान किया वह ज्ञान दुर्बल रहेगा और जहाँ परीक्षापर उत्तीर्ण हो गया वह ज्ञान विधिनिषेधसे अस्ति-नास्तिसे जब उसका भली प्रकार निर्णय हो गया तब वह ज्ञान दृढ़ हो जाता है। परीक्षा होती है प्रमाणसे। तो कल्याणके लिए परीक्षा सबसे पहले आवश्यक हुई। परीक्षासे ही हम यह निर्णय कर सकते हैं कि यह मार्ग हितरूप है और यह अहितरूप है। पदार्थका स्वरूप इस प्रकार नहीं है, पदार्थका स्वरूप ऐसा ही है।

परीक्षामुखसूत्रप्रवचनका संचार—आत्महितके पंथमें वस्तुत्वकी परीक्षा आवश्यक होनेसे पूज्यश्री माणिक्यनन्दी आचार्यने परीक्षाका जिसमें दिग्दर्शन है परीक्षा से सुन्दर-सुन्दर उपायोंका जिसमें दिग्दर्शन है, जैसे कि शरीरका श्रेष्ठ अङ्ग मुख है इसी तरह परीक्षाके उपायोंमें जो श्रेष्ठ उपाय है उनका वर्णन करने वाले सूत्रोंकी रचना की है और इसी कारण इस ग्रंथका नाम परीक्षामुखसूत्र है। इस परीक्षामुख-सूत्रपर अनन्तवीर्याचार्यने प्रमेयरत्नमाला टीका लिखी है। उन सूत्रोंमें जो प्रमेय भरा है, उन सूत्रोंमें जो प्रमेयका संकेत होता है जो कि रत्नकी भाँति हैं, ऐसे प्रमेयरत्नोंकी माला बनाई है और फिर इसी सूत्रपर विस्तृत टीका प्रभाचन्द्राचार्यने की है, प्रमेय-कमलमार्तण्ड अर्थात् जो और भी मर्म प्रमेयमें भरे हुए हैं उन सब मर्मों कमलोंको विकसित करनेके लिए यह मार्तण्ड अर्थात् सूर्यकी तरह है। तो परीक्षाप्रधान इस ग्रंथ में वर्णनका प्रारम्भ किया गया है प्रमाणके स्वरूपके परिभाषण से। तो प्रथम ही प्रमाणके स्वरूपके परिभाषणसे सम्बन्धित समस्त तर्क वितर्कोंका प्रतिपादन है।

प्रमाणके स्वरूपका परिभाषण—प्रमाण होता है ज्ञान और ऐसा ज्ञान जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये। ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है क्योंकि ज्ञानमें

ही यह सामर्थ्य है कि वह हितकी प्राप्ति कराये और अहितका परिहार कराये, अतएव ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है। प्रमाणके स्वरूपके सम्बन्धमें अनेक विवाद उठे, किसीने कहा कि बहुतसे कारक जुड़ जायें उसका नाम प्रमाण है। जैसे प्रकाश आत्मा इन्द्रिय ये सारे इकट्ठे हो गए तो ये प्रमाण बन गये, पर सब इकट्ठे हो जानेपर भी क्या प्रमाणता उन सब कारकोंमें है अथवा किसी एकमें है ? सब मिल करके प्रमाणका रूप नहीं बना। प्रमाणका रूप बनता है किसी एक में। जैसे प्रकाश इन्द्रिय, आत्मा ये तीन इकट्ठे हुए तो ज्ञान तो बना परन्तु यह तो बताओ कि वह ज्ञान वह प्रमाण किसी एकका परिणमन है अथवा तीनोंका ? जो अचेतन है उसमें प्रमाणता नही आ सकती तब किसीने यह छेड़की कि इन्द्रिय और पदार्थका जो सम्बन्ध है वह प्रमाण है, यह भी यों ठीक नहीं बैठता था कि इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध न होनेपर भी ज्ञान होता है और कभी कभी ज्ञान नहीं भी होता। ज्ञान करने वाला कोई जुदा ही तत्त्व है। तब किसीने यह प्रसङ्ग छेड़ा कि इन्द्रियका व्यापार प्रमाण है, सम्बन्ध प्रमाण नही है। क्योंकि उसके प्रामाण्यमें तो सङ्ग देखा गया। कभी इन्द्रियार्थका सम्बन्ध होनेपर भी ज्ञान नही होता, कभी सम्बन्ध बिना भी होता, पर इन्द्रियके व्यापार बिना तो ज्ञान नहीं होता, यह भी बात ठीक नही बैठी क्योंकि ये इन्द्रियाँ अचेतन हैं, इनके हलन चलनका व्यापार भी एक अचेतन क्रिया है, वह भी ज्ञानरूप नही है, वह भी इस ज्ञाताके ज्ञानके बननेमें मात्र बाह्य साधक कारण है तब किसीने कहा कि आत्माका व्यापार प्रमाण है लेकिन वह आत्मा है अज्ञानी अचेतन। उसका व्यापार अचेतन है। तो अचेतनरूप व्यापार है तो प्रमाण नहीं हो सकता और चेतनरूप यदि व्यापार है तो वही बात आयी, ज्ञानमाण। तब किसीने और-और प्रकारसे भी प्रमाणके सम्बन्धमें बात रखी, लेकिन सिद्ध यह हुआ कि जो स्वपरव्यवसायी ज्ञान है वही प्रमाण हो सकता है। प्रमाणका प्रयोजन है हितकी प्राप्ति हो और अहितका परिहार हो। इन दो बातोंके करनेमें समर्थ ज्ञान ही होता है।

ज्ञानका स्वपरनिर्णयाकत्व – वह ज्ञान निर्णयात्मक होता है वहाँ संशय विपर्यय अनध्यवसाय ये दोष नहीं होते। जिस ज्ञानमें निर्णय भरा हो वही ज्ञान प्रमाणरूप होता है। तो निर्णयकी बात सुनकर यहाँ क्षणिकवादी एक यह आशङ्का रखते हैं कि निर्णय तो माया है, निर्णय तो अपरमार्थ है, सत्य तो एक निर्विकल्प तत्त्व है, वही वास्तविक प्रत्यक्ष ज्ञान है। जो ज्ञान निर्णय रखता हो वह सविकल्प है और मायारूप है। ज्ञान तो एक निर्विकल्प चेतनरूप रखा करता है, पर यह बात यों नहीं बनती कि निर्णयात्मक ज्ञानके बिना वस्तुस्वरूपकी पुष्टि नहीं हो सकती। क्या मायारूप ज्ञानसे वस्तुस्वरूपकी परीक्षा होगी ? तब उस वस्तुस्वरूपकी बात सुनकर कोई बोल उठा — तो बतलाओ वस्तुस्वरूप क्या है ? अरे वही प्रमाण है और वही वस्तुस्वरूप है, अन्य कुछ नही है और ज्ञानके साथ कुछ न कुछ शब्द उठा करते हैं। शब्द सहित ज्ञान बनता है। तो ज्ञान भी क्या चीज है ? शब्द ही ज्ञान कहलाया ! शब्दात्मक जगत

है, शब्दात्मक ज्ञान है, इसलिए एक शब्दाद्वैत ही तत्त्व है। शब्दानुविद्धता ज्ञानमें होती है, यह एक पक्ष आया, लेकिन यह बात युक्त यों नही है कि जितने शब्दानुबंधी ज्ञान हैं वे सब छद्मस्थोंके ही कोई कोई ज्ञान हैं, वहांपर भी ज्ञान और शब्द एक नही हो जाते। वहां भी वे दो तत्त्व हैं लेकिन ज्ञानके साथ श्रुतबोधका व्यक्त करने वाले अन्तर्जल्प होते हैं, वहां भी प्रामाण्य बोधमें है। तब यही सिद्ध हुआ कि स्वपरव्यवसायी ज्ञान ही प्रमाण होता है और उसमें स्वका भी निर्णय भरा है। जो भी ज्ञान पदार्थको ठीक समझता है वह अपना निर्णय करता हुआ ही रहता है। कोईसा ज्ञान ऐसा नही है कि जो पदार्थकी तो व्यवस्था बनाये और अपने बारेमें संशय रखे कि यह जो ज्ञान हुआ है वह सही या नही। अगर ज्ञानमें संशय है तो उस ज्ञानके द्वारा जिस पदार्थको जाना है उस पदार्थमें भी संशय हो बैठेगा, इसलिए ज्ञान वही प्रमाण है जो स्वका निर्णय रखे और परका भी निर्णय रखे।

स्वार्थसद्भावके विरोधपर विचार—यहाँ किसीने यह भी छेड़ की कि स्व और पर ऐसो दो बातें कहीं है ही नहीं। जो कुछ है वह सब एक है और वह ब्रह्मस्वरूप है ब्रह्मके अतिरिक्त जगतमें और कुछ नही है, लेकिन ब्रह्म ही केवल एक तत्त्व है तब वही रहा आये, फिर यह सब कुछ दृश्यमान समागम ये व्यवहार ये विडम्बनायें ये खटपट कहाँसे हो उठे? कोई कहे कि ये सब मायासे उत्पन्न हुये तो माया भी कोई चीज है ना, अगर नहीं है, असत् है तो असत्से कुछ नहीं हुआ करता। तब एक ही तत्त्व है यह बात तो न रही। तो इसपर क्षणिकवादी बोले कि ब्रह्म तो तत्त्व नहीं, किन्तु एक ज्ञान ही तत्त्व है। जो कुछ है वह सब एक है। जो कुछ है वह सब ज्ञान है और वह क्षण-क्षणमें नया-नया पैदा होता है। जो दिख रहे हैं भींट ईंट मकान वगैरह, ये सब क्या हैं? ये कुछ नहीं हैं। ये हमारे ज्ञानकी कल्लोल हैं, सब ज्ञानात्मक हैं, सब प्रतिभासस्वरूप है। तो ज्ञान ही मात्र एक तत्त्व है, लेकिन यह बात नही बनती कि ज्ञानका काम फिर क्या रहा? ज्ञान किसे कहते हैं? ज्ञान जाननेको कहते हैं और जानना किसी विषयका ही हुआ करता है। कुछ भी बात ज्ञेय तो होना ही चाहिये। ज्ञेयके बिना ज्ञानका कोई स्वरूप नहीं बनता। इस विषयपर बहुत चर्चा चली। तब उसी सिद्धान्तका कोई दूसरा अनुयायी कहता है कि ज्ञान ही तत्त्व है, यह तो समझना माध्यम है, यह भी इस रूपमें ठीक नही किन्तु शून्य ही तत्त्व है। जब हम उस ज्ञानके स्वरूपपर विचार करते हैं कि वह ज्ञान केवल जिसमें कोई परपदार्थ नही है, प्रतिभास में ज्ञान ही ज्ञान है तो ऐसी दृष्टिमें कुछ भी नजर नही आता तो आखिर ज्ञानमात्र ही तत्त्व है यह तो उपाय है पर तत्त्व वास्तवमें शून्य है। उस शून्यका परिज्ञान करनेसे ही आत्माके संकट दूर होते हैं। तब इसी सिद्धान्तका एक अनुयायी बोला कि शून्य ही तो नही। शून्य ही सब कुछ है तो फिर करना क्या रहा? शून्य तत्त्व नही किन्तु ऐसा चित्रित ज्ञान जिस ज्ञानमें ये समस्त आकार प्रतिबिम्बित होते हैं ऐसा चित्रि विचित्र ज्ञान ही एक स्वरूप को रखकर तत्त्व बनता है। इतना कुछ वर्णन करनेके बाद जो

कुछ भौतिकवादी लोग सुन रहे थे उनसे आखिर न रहा गया तो बोले कि यह सब प्रलाप मात्र है। ज्ञान क्या है ? एक विद्युत है, बिजली है जो कि पृथ्वी, जल, अग्नि वायु आदिक अनेक संयोगोंसे उत्पन्न हुई है उसका कोई अलग अस्तित्त्व नही है लेकिन यह बात भी यों सिद्ध न हो सकी कि कोई किसी रूप परिणमता है तो अपनी जातिका उल्लंघन न करके ही परिणमता है। ये भौतिक पदार्थ स्वयं ज्ञानशून्य हैं। ये मिलकर परिणमें तो ज्ञानरूपताको उत्पन्न नही कर सकते।

ज्ञानके स्वत्वपर चर्चा— इस ज्ञानके सम्बन्धमें जिसका कि स्वरूपके परिभाषणके द्वारसे वर्णन किया है। अनेक लोग अनेक प्रकारके आशय रखते हैं। किन्हीका आशय है कि ज्ञान क्या है ? पदार्थका आकार है वह ज्ञान है। ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होते हैं और पदार्थका आकार लिए हुए होते हैं। ज्ञानका आधारभूत कोई स्वतंत्र आत्मा नहीं है। तब इन साकार ज्ञानवादियोंका भी समाधान दिया गया कि स्वय कुछ नही है तो आकार आया किसमें ? किसने उसको ग्रहण किया। पदार्थने आकार तो सौंपा पर ग्रहण किसने किया ? उस ग्राहक तत्त्वको माने बिना तो यह बात बन नही सकती और आकार सौंपनेकी भी बात भी अयुक्त है यों संक्षेप रूपमें इन सब अज्ञानवादियों का कुछ संकेत दिया है। इसके स्वरूप और विसम्वादोंमें तो बहुत समय लगा है, पर एक साधारण रूपसे यहाँ तक यह सिद्ध किया गया कि ज्ञान ही प्रमाण है और और उस ज्ञानमें दोमुखी आभा है स्वका भी निर्णय रखे और परका भी।

ज्ञानप्रयोगमें स्वपर प्रकाशकत्वकी झांकी— जैसे लोग बोलते ही हैं कि मैं अपने ज्ञानके द्वारा इन जीवोंको जानता हूँ तो इसमें कितनी चीजोंका प्रतिभास आ गया ? मैं जानता हूं, इसमें मैंका भी प्रतिभास हुआ। जीवोंको जानता हूँ, तो जीवोंका भी प्रतिभास हुआ ज्ञानके द्वारा जानता हूं तो उसे निजी साधनका भी प्रतिभास हुआ। किसीने यह कहा कि ज्ञान स्वयं-स्वयंको नही जानता, अन्य ज्ञानके द्वारा जाना जाता है, लेकिन जो ज्ञान स्वयंको न जाने, दूसरे ज्ञानके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानमें स्पष्टता नही आ सकती। तथा अभी जिस ज्ञानसे हमने जाना उस ज्ञानकी जानकारीके लिए अन्य ज्ञान चाहिये और उस अन्य ज्ञानकी जानकारीके लिए अन्य ज्ञान चाहिये, तो ज्ञान का ही स्वरूप बनना कठिन हो जायगा, फिर पदार्थोंके जाननेका तो अवसर ही कब आयगा ? इससे यह निर्णय रखना चाहिये कि ज्ञान ही प्रमाण है और ज्ञानसे ही वस्तु के स्वरूपकी परीक्षा है। जैसे दीपक है वह अपने आपको भी उजेलेमें रखता है और अन्य पदार्थोंको भी ज्ञान उजेलेमें करता है, इसी तरह ज्ञान स्वयंका भी ज्ञान करता है और अन्य पदार्थोंका भी ज्ञान करता है।

ज्ञानका स्वत: व परत: प्रामाण्य— यह ज्ञान ठीक है ऐसी ठिकाई अर्थात् इसका प्रामाण्य कभी-कभी तो स्वयमेव हो जाता है। जिन चीजोंको हम रोज-रोज

देखते रहते है, बहुत बार जानते रहते हैं उन चीजोंका जब कभी हम ज्ञान करते हैं तो उनकी प्रमाणता हमारे ज्ञानमें स्वयमेव हो जाती है। जैसे जिस मार्गसे रोज जाते हैं तो उस मार्गमें थोड़ी दूर चलकर नदी अथवा कुवाँ मिलता है, वहां वह ज्ञान करता है कि यहाँ नदी है ही और उसका निर्णय करनेमें उसे अधिक सोचना नही पड़ता। तुरन्त सही ज्ञान होता है और जिस मार्गसे कभी गये ही नही उस मार्गसे जानेका मौका पड़ गया और लग गयी प्यास तो अब सोचते हैं कि कहीं पानीका ठिकाना हो जाय कही दूर पर मेढ़कोंकी आवाज सुनायी दी, सोचा कि वहाँ जल होगा। चलता गया। आगे चल कर उसे फूटे घड़े नजर आये तो निर्णय कर लिया कि यहाँ पानी अवश्य है, थोड़ी दूर जाकर उसे कोई महिला या पुरुष पानी भरकर लिए जाता हुआ दिखा। तो उस पुरुष की प्रमाणता पर से हुई।

प्रमाणके भेदोंकी चर्चा ज्ञान स्व और परका जानने वाला होता है यह सिद्ध करनेके बाद फिर उस ज्ञानके भेद बताये गए हैं कि ज्ञान दो तरहके होते हैं–एक प्रत्यक्ष ज्ञान और एक परोक्ष ज्ञान। जो स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं और जो अस्पष्ट जाने उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। किसी ही साधनसे ज्ञान होता हो या तो वह स्पष्ट जानने वाला होगा या अस्पष्ट। इस तरह प्रमाणके दो भेद न मानकर क्षणिक-वादी कहता है कि प्रमाण दो तरहका तो है पर वह है प्रत्यक्ष और अनुमान। लेकिन ये भेद यों ठीक नही बैठते कि भेद किये जाते हैं इस ढंगसे कि जिसका भेद करना है उसका कोई अंश छूटे नही, तो भेद बनता है पर प्रत्यक्ष और अनुमान इतना ही मात्र भेद करनेमें जो अन्य ज्ञान हैं स्मरण है प्रत्यभिज्ञान है तर्कवितर्कादि ये सब तो उसमें नही आये। कोई कहे कि एक ही प्रमाण है–प्रत्यक्ष जो आँखे देखा, जो नजरमें आया वही एक ज्ञान है। तो कहते हैं कि उस प्रत्यक्षकी भी सिद्धि प्रत्यक्षमात्रसे नही की जा सकती एक ही ज्ञान है–प्रत्यक्ष। इसका तो अर्थ है कि जो हमें जानकारीमें आया वही तो है अन्य कुछ नही। भला बतलावो दूसरेका जो आत्मा है उसमें भी ज्ञान है कि नही ? उसका ज्ञान हमें कैसे हो ? प्रत्यक्षसे तो होता नही, तुमने अपना जैसा भाव समझकर अनुमानसे ही तो जाना। तो न केवल प्रत्यक्ष यों कह सकते, न प्रत्यक्ष अनुमान यों कह सकते। किसीने तीन भेद किये किसीने चार पांच। किसीने प्रत्यक्ष अनुमान आगम अर्थापत्ति, उपमान अभाव भेद किये पर ये सब भेद व्यक्त तर हैं व पुनरुक्त हैं। उपमान तो प्रत्यभिज्ञानमें सामिल होता है। यदि उपमानको अलग प्रमाण मानते हो तो विसदृशताका ज्ञान किस प्रमाणमें जायगा। अर्थापत्ति अनुमानमें गर्भित होता है, अभाव सभीमें गर्भित होता है। जिसके द्वारा अभाव जाना है अभाव उसमें सामिल होता है।

प्रत्यक्ष ज्ञानके स्वरूपकी चर्चा—प्रत्यक्षके भेदकी कुछ आलोचना करके अब प्रत्यक्षके स्वरूपके निर्णयपर उतरें। प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो निर्मल ज्ञान हो। विशद ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय और पदार्थके आँख और पदार्थके सम्बन्धसे प्रत्यक्ष

नहीं कह सकते। यह ज्ञान आत्मासे ही उत्पन्न होता है, कहीं पदार्थोंसे उत्पन्न नही होता, कहीं प्रकाश आदिक कारणोंसे उत्पन्न नही होता। और यह ज्ञान जब एकदेश स्पष्ट रहता है तब तो कहते हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। और उसके ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मोंका सर्वथा क्षय हो जाता है, उस समय जो सर्वका ज्ञान होता है वह कहलाता है पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान। उस ज्ञानको कर्मोंने ढका है अर्थात् कर्मोंके आवरणका निमित्त पाकर ज्ञानस्वरूप निर्मल व पूर्ण अवस्थामें नहीं रहता आया है। संयमसे, सम्यक्त्वसे, तत्त्वज्ञानसे, उपायोंसे उन कर्मोंका सम्वर होता और निर्जरा होती। तब आवरणका अपाय होता और यह ज्ञान सबका जानने वाला होता है।

निरावरण ज्ञानके सर्वज्ञत्वपर किये गये विरोधपर विचार—यहाँ ईश्वरकर्तृत्ववादीने यह कहा कि कर्मोंका आवरण दूर होनेसे सर्वज्ञता नहीं होती, किन्तु कोई अनादिमुक्त सदा शिव ईश्वर हो है वही सदा से सर्वज्ञ रहता आया। उस एक को छोड़कर कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता। वह सर्वज्ञ इस कारण है कि वह सारे विश्वको करने वाला है। जो सबको न जाने वह सबको कर कैसे सकता। इस सम्बंध में विस्तार रूपसे समाधान दिया गया कि पदार्थ इस प्रकार नहीं बना करते हैं। पदार्थोंकी योग्यतासे ही हुआ करती है। ईश्वर तो अनन्त ज्ञान दर्शन आनन्द शक्ति-मय विशुद्ध पवित्र चेतन है। तब प्रकृतिवादी यह बोलते हैं कि ऐसा अनादिमुक्त ईश्वर तो सर्वज्ञ नहीं, क्योंकि आवरणके दूर होनेपर हीं सर्वज्ञता प्रकट होती है। मगर वह आवरण प्रकृतिपर छाया है और आवरण दूर होनेपर प्रकृति सर्वज्ञ बनता है। क्योंकि प्रकृति सबका करने वाली है, इस सम्बन्धमें विस्तारसे निराकरण होनेपर फिर कोई सेश्वर प्रकृतिवादी कहते हैं कि केवल प्रकृति नहीं बनाती जगतको, किन्तु प्रकृतिका सहयोग पाकर ईश्वर बनाता है। इस सम्बन्धमें भी विचार किया गया कि जब प्रकृतिमें भी कर्तापन नहीं है ईश्वरमें भी कर्तापन नहीं है तो मिल करके भी भी कर्तापन नहीं हो सकता। जब ये दोनों नित्य है तो नित्यमें कभी विकार नहीं होता तो इनमें सहयोगसे भी कुछ अतिशय आ नहीं सकता, कैसे यह सम्भव है कि इस जगतकी रचना बराबर इस क्रमसे होती चली जाय, जहां कोई गड़बड़ी न हो और न यह अव्यवस्था हो कि रचना प्रलय अवस्थिति सब एक साथ न हों। ये सब व्यवस्थायें तो पदार्थके स्वरूपके ही कारण हैं, और पदार्थके स्वरूपका निर्णय करानेके लिये इस ग्रन्थमें प्रतिपादन हुआ है।

ज्ञानके निर्णयका महत्व—यहां तक प्रमाणके स्वरूपके परिभाषणसे प्रोर-म्भ करके यह सिद्ध किया गया कि ज्ञान हीं तक हितरूप है, ज्ञान ही प्रमाण है, उस ज्ञानका ही हमें निर्णय करना है। ज्ञानसे ही हम समस्त परपदार्थोंका निर्णय करते हैं, अतः हमें उस ज्ञानकी खोज करना चाहिए, ज्ञानका निर्णय करना चाहिए। प्रथम तो उस ज्ञानका ही स्वरूप जानें कि वह ज्ञान क्या है जिस ज्ञानके द्वारा हम इन

समस्त पदार्थोंको जानते रहते हैं। वह ज्ञान मैं ही हूं, मेरेसे अलग ज्ञान नहीं है, मैं केवल ज्ञानमात्र हूं। ज्ञानस्वरूपको छोड़कर मेरा और कोई स्वरूप नहीं है। जो हित रूप है, शरण— रूप है, सर्व व्यवस्था करने वाला है, अपने लिए पूरा महत्व रखता है वह सब मैं ही तो हूं। मैं अपने आपकी शरणमें आऊं तो मुझे हित मिल सकता है और मैं अपनी शरणको छोड़कर, अपने ज्ञानस्वरूपको छोड़कर बाहरी चीजोंमें लगूं तो मेरी ऐसी ही घटनायें, जन्म मरण करना बना रहेगा जहां मेरा कुछ भी हित नहीं है।